RNI Title Code :- MPHIN32499 ISSN : 2455-9717

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 1, अंक : 2
जुलाई-सितम्बर 2016
मूल्य : 50 रुपये

कोई प्रलय अंतिम नहीं,
न ही कोई हार अभिशप्त है जीत में न बदल पाने को
सबसे बड़ी उम्मीद है
कि सबसे निर्मम के उत्थान के बाद भी,
कैसे उदित होता है सहजीवन के लिए दमकता एक सूर्य
हाँ, संकटो में सभी रास्ते धुँधला सकते हैं
और क्षमाभाव विलुप्त प्राय: हो सकता है
हो सकता है कि कविता किसी घिसे हथियार सी
तुम्हारे हाथो में हो,
मान सकता हूँ कि जीवन के सबसे बुरे दौर में भी तुम किसी
तरह टिके हुए हो
तो यह सोच कर तुम बने रहना
समय की चाक पर किसी उम्मीद की तरह हथियार घिसना
और पहचानना, मिटटी पर पड़ती धूप का रंग,
सीखना, खुद की परछाइयों से संवाद की कला
समझना, हवाओं के पृथ्वी भर का चक्कर लगाने की प्रवृत्ति
सबसे बड़ी उम्मीद है
कि बचे रहने की जुगत तुम्हे चीटियाँ बता देंगी
फिर तुम प्रलय पूर्व की आँधियों में यह सोच कर निश्चिन्त होना
और बने रहना,
कि यह किसी नए प्रारम्भ की आहट है!
-वीरू सोनकर

शिवना प्रकाशन के नए सेट की पुस्तकें

समय, शब्द और मैं
(कविता-संग्रह)
मूल्य : 225 रुपये
प्रथम संस्करण : 2016

लेखक
कृष्णकांत निलोसे
(वरिष्ठ कवि)

आपके लाए हुए दिन
(हिन्दी ग़ज़ल-संग्रह)
मूल्य : 100 रुपये
प्रथम संस्करण : 2016

लेखक
विजय बहादुर सिंह
(वरिष्ठ आलोचक, कवि)

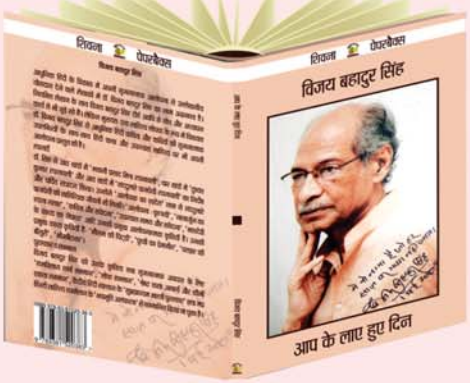

एक कणिका की यात्रा...
(संस्मरण)
मूल्य : 225 रुपये
प्रथम संस्करण : 2016

लेखक
सीतारानी
(राजमाता मकड़ाई)

सरासर
(कहानी-संग्रह)
मूल्य : 250 रुपये
प्रथम संस्करण : 2016

लेखक
जीवनसिंह ठाकुर
(वरिष्ठ कथाकार)

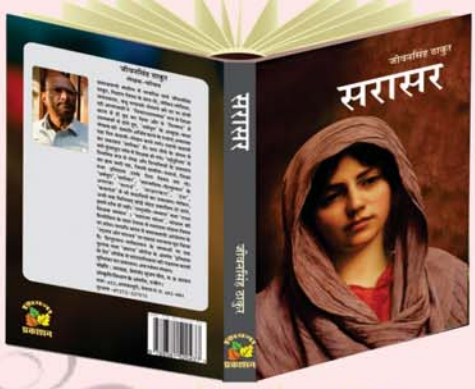

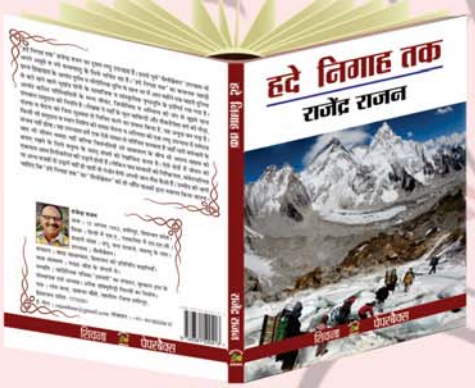

हदे निगाह तक
(उपन्यास)
मूल्य : 175 रुपये
प्रथम संस्करण : 2016

लेखक
राजेंद्र राजन
(वरिष्ठ कथाकार)

समय समेटे साक्ष्य
(कविता-संग्रह)
मूल्य : 240 रुपये
प्रथम संस्करण : 2016

लेखक
चौ. मदन मोहन समर
(सुप्रसिद्ध ओज कवि)

अ ग्रीन वॉरियर
(उपन्यास)
मूल्य : 200 रुपये
प्रथम संस्करण : 2016

लेखक
अमित महोदय आर्यावर्ती
(लेखक, फिल्म अभिनेता)

शब्दों की बस्ती में
(कविता-संग्रह)
मूल्य : 200 रुपये
प्रथम संस्करण : 2016

लेखक
प्रदीप नवीन
(वरिष्ठ कवि)

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9584425995,
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

Shivna Prakashan Books Available At
All Leading Online Shopping Stores

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

paytm
https://www.paytm.com

ebay
http://www.ebay.in

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 1, अंक : 2

त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2016

RNI Title Code :- MPHIN32499

ISSN : 2455-9717

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक

सुधा ओम ढींगरा

●

प्रबंध संपादक

नीरज गोस्वामी

●

संपादक

पंकज सुबीर

●

कार्यकारी संपादक

शहरयार

●

सह संपादक एवं तकनीकी सहयोग

पारुल सिंह

●

आवरण चित्र

पल्लवी त्रिवेदी

●

डिज़ायनिंग

सनी गोस्वामी

●

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय

पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6

सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट

बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001

दूरभाष : 07562405545, 07562695918

मोबाइल : 09806162184

ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना प्रकाशन'

http://shivnaprakashan.blogspot.in

फेसबुक पर 'शिवना प्रकाशन'

https://facebook.com/shivna prakashan

●

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)

सदस्यता शुल्क

200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)

1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)

कुछ यूँ...

आवरण कविता / वीरू सोनकर

●

संपादकीय / 4

●

व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 5

●

कविताएँ

अशोक कुमार पाण्डेय / 6

●

कहानी

टच मी नॉट / गीताश्री / 11

●

आलोचना

राकेश बिहारी / 14

●

ग़ज़लें

लोकेश कुमार सिंह 'साहिल' / 13, 25

●

क़िस्सागिरी

गौतम राजरिशी / 17

●

डायरी

पल्लवी त्रिवेदी / 18

●

खबर-कथा

मेरा सच / राजश्री मिश्रा / 20

●

फिल्मी दुनिया से

कृष्णकांत पंड्या / 25

●

पुस्तक समीक्षा

''तक़्सीम'' / वेदप्रकाश सिंह / 26

''केनवास पर प्रेम'' / डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'/ 29

''चुनाव, राजनीति और रिपोर्टिंग'' / सुशील कुमार शर्मा / 33

पुस्तक चर्चा

''नक़्क़ाशीदार केबिनेट'' / अजय नावरिया / 32

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

संपादकीय

समस्या इस समय समीक्षाओं को लेकर है

शहरयार

बहुत से पाठकों ने अपनी प्रतिक्रिया में यह जानना चाहा है कि आख़िर लगभग एक से संपादकीय मंडल की दो पत्रिकाओं का क्या मक़सद है ? मित्रो! यदि आप दोनो पत्रिकाओं का कलेवर देखेंगे तो आपको यह अंतर स्पष्ट दिखाई देगा कि दोनो पत्रिकाएँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। 'शिवना-साहित्यिकी' को आलोचना, समीक्षा, शोध आदि पर केंद्रित रखने का प्रयास आगे के अंकों में किया जाएगा। और 'विभोम-स्वर' साहित्य की हर विधा का मंच है। चूँकि यह प्रारंभ है इसलिए अभी 'शिवना-साहित्यिकी' को उतनी समीक्षाएँ, आलोचनाएँ आदि प्राप्त नहीं हो रही हैं, जिसके चलते हम अभी अन्य विधाओं को भी स्थान दे रहे हैं। आगे यह आलोचना पर केन्द्रित होगी ऐसा हम विश्वास दिलाते हैं।

असल में समस्या इस समय समीक्षाओं को लेकर ही है। इन दिनों जितनी समीक्षाएँ लिखी जा रही हैं, उतनी शायद पूर्व में कभी भी नहीं लिखी गईं होंगी। इस अधिकता के कारण ही गुणवत्ता में तेज़ी के साथ कमी आ रही है। समीक्षा के जो मापदंड पूर्व में स्थापित किए गए थे, वे सब छिन्न-भिन्न हो गए हैं। समीक्षा का अर्थ केवल और केवल प्रशंसा होकर रह गया है। समीक्षा का एक तय फार्मेट हो गया है। उस पर भी यदि कविता संग्रह अथवा ग़ज़ल संग्रह की समीक्षा करनी हो तो कार्य और भी आसान है। पहले कवि के बारे में दो-चार बातें लिखिए, फिर अलग-अलग विषयों पर संग्रह में लिखी गई उसकी कविताओं पर अलग-अलग टिप्पणी करते हुए, कविताओं या ग़ज़लों की ढेर-ढेर पंक्तियाँ सीधे-सीधे उतार दीजिए। जैसे यह कि कवि सांप्रदायिकता को लेकर बहुत ग़ुस्से में है और इस-इस प्रकार से अपना क्रोध व्यक्त करता है। इसके बाद अलग-अलग कविताओं में कवि द्वारा सांप्रदायिकता पर लिखी पंक्तियों को सीधे-सीधे उतार दीजिए। इसके बाद ग़रीबी, भुखमरी, राजनीतिक व्यवस्था, प्रेम, प्रकृति, स्त्री, आदि, आदि, आदि..... बहुत से शीर्षक हैं आपके पास। बस हर शीर्षक के बारे में दो-चार लाइनें लिखकर कवि की पंक्तियों को उठा लीजिए। कई समीक्षक तो अलग-अलग पुस्तकों पर की गई अपनी समीक्षाओं में शीर्षक बदलने की ज़हमत तक नहीं उठाते।

इसके बाद अंत में आपको कुछ नहीं करना है; बस यह करना है कि एक 'अंत भला सो सब भला' जैसा अंत अपनी समीक्षा का करना है। अंत भला सो सब भला इसलिए क्योंकि वही सब सुनना चाहते हैं। लेखक को अपनी शुभकामनाएँ दीजिए, उसकी सफलता की कामना कीजिए और अपनी लेखनी को विराम दीजिए। इस प्रकार से, मानों आप पुस्तक की भूमिका लिख रहे हों, जो पुस्तक में ही छपनी हो। इसी प्रकार की समीक्षाएँ हमें भी प्राप्त होती हैं। और बहुतायत में प्राप्त होती हैं। कहा यह जाता है कि कुछ भी मुकम्मल नहीं है, सम्पूर्ण नहीं है, तो फिर कोई कृति कैसे सम्पूर्ण हो सकती है, इस प्रकार, कि उसमें समीक्षक को कोई दोष ही नज़र नहीं आ रहा है। बस यही हमारी दुविधा है। समीक्षाएँ आएँ तो कम से कम वे संतुलित हों। लेखक को भी यह समझना होगा कि उसकी पुस्तक को समीक्षाएँ स्थापित नहीं करेंगी, पाठक स्थापित करेंगे।

आलोचना में इस बार युवा आलोचक तथा कहानीकार राकेश बिहारी के लेखों की शुरुआत हम कर रहे हैं। राकेश बिहारी ने आलोचक अरुण देव के संपादन में निकलने वाली वैब पत्रिका 'समालोचन' के लिए कई सारे लेख लिखे हैं। यह लेख किसी एक कहानी पर एकाग्र हैं। यह लेख अभी तक प्रिंट मीडिया में नहीं आए हैं, पहली बार हम इन्हें प्रकाशित कर रहे हैं। इस बार कहानीकार आकांक्षा पारे काशिव की कहानी पर एकाग्र राकेश बिहारी का लेख 'समालोचन' से आभार के साथ प्रकाशित किया जा रहा है। गौतम राजरिशी भी नियमित रूप से पिछले दिनों किसी भी पत्रिका में प्रकाशित किसी एक कहानी पर लेख लिखेंगे, एक पाठक के नज़रिए से, 'क़िस्सागिरी' में। सुप्रसिद्ध व्यंग्य चित्रकार काजल कुमार ने भी हमारा अनुरोध स्वीकार किया है तथा हर अंक में हम उनके व्यंग्य-चित्र, जो कि साहित्यिक दुनिया पर ही केंद्रित होंगे, प्रकाशित करेंगे। इस बार उनके चार व्यंग्य चित्रों के साथ हम शुरुआत कर रहे हैं। सुप्रसिद्ध फिल्म निर्देशक कृष्णकांत पंड्या ने हमारे अनुरोध पर, फिल्मों के लिए कैसे लेखन किया जाए, इस विषय पर धारावाहिक रूप से लिखना प्रारंभ किया है, जिसकी पहली कड़ी इस अंक में शामिल है। इस प्रकार के लेख की उपयोगिता हमें महसूस हो रही थी। उम्मीद है कि इस लेख की निरंतरता बनी रहेगी और इससे उन लेखकों को मदद मिलेगी, जो फिल्मों हेतु लेखन करना चाहते हैं।

बाकी एक कवि में अशोक कुमार पाण्डेय, एक कहानीकार में गीताश्री, एक ग़ज़लकार में लोकेश कुमार सिंह 'साहिल', पल्लवी त्रिवेदी की डायरी, राजश्री मिश्रा की ख़बर कथा और प्रज्ञा, विमलेश त्रिपाठी एवं ब्रजेश राजपूत की पुस्तकों पर समीक्षाएँ तो हैं ही....आपकी प्रतिक्रियाओं का इंतज़ार रहेगा.....

आपका अपना,

शहरयार

व्यंग्य-चित्र

काजल कुमार

602, कृष्ण कुंज अपार्टमेंट्स, प्लॉट नं.
14, सेक्टर-7, द्वारका, नई दिल्ली 110075

कुछ न होता तो ख़ुदा होता उर्फ़ गनीमत है

अशोक कुमार पाण्डेय

बचा कुछ नहीं

एक कवि को गौरैया बचानी थी कविता में
दूसरा वर्षों से ढूँढ़ रहा था बाबूजी का चश्मा
अड़हुल का फूल बचाने के तीसरा प्रतिबद्ध था
और सब मिलकर प्रेम को बचाने में लगे थे

वे भाषा को बचा लेना चाहते थे कविता के भीतर
गाँव की कच्ची सड़क पर एक पत्थर न पड़ने देने के लिए कटिबद्ध थे
आबद्ध थे अपने हिस्से की ज़मीन बचा लेने को
अम्मा के सोहर बचाने थे उन्हें
दीदी का सेंदुरदान बचाना था
कविता के भीतर एक पूरा एल्बम बचाना था उन्हें
बारिश भी बचानी थी और छत भी
दरअसल वे बचा लेना चाहते थे वह पूरा गाँव जहाँ गए वर्षों हुए

वे बचा रहे थे पूरी शिद्दत से एक बीता हुआ जीवन कविता में
उनका दावा था इस तरह वे कविता को भी बचा रहे हैं
और बचेगी कविता तो मनुष्यता बचेगी
बचेगा मनुष्य तो प्रेम बचेगा
बचेगा प्रेम तो ... फिर और कुछ बचाने की ज़रूरत भी न बचेगी

व्यवधान के लिए खेद है कहे बिना इसी बीच एक दढ़ियल शख्स ने अपनी तस्वीर ठीक कविता वाले पन्ने पर चेंपते हुए कहा असल में हमें बेटी बचानी है और जैसे कवि बचाते हैं कविता में जीवन हम फोटो में बचायेंगे बेटियों को और वह भी खुद से खींचे जायेंगे। इस तरह पहले खुद बचेंगे फिर बेटियों को बचायेंगे और फिर जो जो मुमकिन होगा फोटो के भीतर बचा लेंगे।

पाठक कहीं नहीं था इन सबके बीच मित्रों
हुआ यह कि बस वही नहीं बचा।

❐

चंद्रकात देवताले के लिए

सुना आज उज्जैन में ख़ूब हुई बरसात
सुना तुम्हारा मन भी बरसा था बादल के साथ

मुझे नींद नहीं आ रही और बतियाना चाहता हूँ तुमसे
कि पता चले कहीं खून ठंडा तो नहीं हो गया मेरा
सच कहूँ...कुछ लोगों की नींद हराम करने का बड़ा मन है!

पठार अब और तेज़ भभक उट्ठा है साथी
जो लोहा जुटा रहे थे उन्होंने किसी मूर्ति के लिए दान कर दिया है
तुमने जिस बच्ची को बिठा लिया था बस में अपनी गोद में
उसकी नीलामी की ख़बर है बाज़ार में

आग हर चीज़ में बताई गयी थी और हड्डियों तक में न बची
देखते-देखते सिंहासनों पर जम गए भेड़िये
देखते-देखते मंचों पर हुए सियार सब सवार
अबकि तुम्हारी काफी में मिला ही देंगे ज़हर
और तुम सावधान मत होना..प्लीज़

चलो घूम कर आते हैं
नुक्कड़ की वह गर्म चाय और प्याज कचौड़ी चलो खिलाओ
वरना तो फिर सपने में ताई की डाँट पड़ेगी
बच्चों को भूखा भेजा? कब सुधरोगे ?

चलो जुनूँ में बकते ही हैं कुछ
क्या करें?
कहाँ जाएँ?
मैं दिल्ली तुम उज्जैन
दोनों बेबस दोनों बेचैन!

❐

कुछ न होता तो ख़ुदा होता उर्फ़ गनीमत है

(एक)

जिन सड़कों पर कोई नहीं चलता वे भी कहीं न कहीं जाती हैं
उन घरों में क़िस्से रहते हैं जो अब खाली हैं

यह काग़ज़ एक हराभरा पेड़ था
उस पर चिड़ियाँ थीं जो
उन जैसी आवाज़ नहीं किसी शब्द में
उन पत्तों जितनी ख़ामोशी भी नहीं

आग भय से मुक्ति के लिए बनी थी
अब भय उसका प्रेमी है
पहला पत्थर रक्षा के लिए उठा था
आख़िरी आत्महत्या के लिए उठेगा

आदम से अधिक हव्वा खुश थी स्वर्ग से मुक्ति पर
अब वह आदम से मुक्ति के रास्ते तलाश रही है

लोग बसने जाते हैं और विस्थापित हो जाते हैं
❐

(दो)

हर दिल्ली में एक इज़राइल है
हर आज़मगढ़ में एक ग़ाज़ा

इस घर को गौर से देखो
यहाँ अशोक कुमार पाण्डेय पैदा हुआ था
अब इस खंडहर सा ही है अशोक आज़मी
अब जब यह घर नहीं रहा आज़मगढ़ में
एक आज़मगढ़ मेरे भीतर है और मैं दिल्ली में रहता हूँ

मैं कविता में शरण लेने नहीं आता
जितना बस की खिड़की से दिखे उतना गाँव भीतर हो भी तो क्या?
तुम एक शब्द लाओगे स्मृतियों के कोटर से
और कविता में सजा कर रख दोगे
वह एक फुलकारी सजा कर रख देगा कमरे में

ग़ाज़ा क़ब्रगाह में है
शुक्र है
आज़मगढ़ जेल में है

कवियों
बख्श देना आज़मगढ़ को
दिल्ली की बख़्शीश के बदले

ग़ाज़ा पर अभी-अभी एक बम गिरा है ...
❐

(तीन)

''आग़ हर चीज़ में बताई गयी थी''

पठार धधकते हैं सीने की आग से
बम की आग से रेगिस्तान बन जाते हैं

सीने की आग संविधान के खिलाफ है कवि
चूल्हे की आग विकास के खिलाफ है
माचिस में आग नहीं तीलियाँ हैं बस
आग उन्हें रगड़ने वाले हाथों में थी कभी

तुम ग़लत साबित हुए कवि
और वे सही
किसी झूठे ने लिखा था सत्यमेव जयते

कविताएँ सारी दिन के सपनों में लिखी गयीं थीं
सारे सपने रतजगों की पैदाइश थे या सस्ती शराब के नशे के
जिन्होंने शराब बेची वही सपने भी बेचते रहे
हम ख़रीदार थे ख़रीदार रहे।
❐

(चार)

पक्का कह सकते हो हव्वा ने ही खाया था वह फल?

यह भी तो हो सकता है उस दिन आग न रही हो चूल्हे में
और घर लौटने में हव्वा को देर हुई हो
तो आदम ने खा लिया हो वह फल

तुम रोज़गार सुनते हो और आदम कहते हो
तुम खेती सुनते हो और आदम कहते हो
तुम्हें भूख सुनकर हव्वा की याद क्यों आती है?

ईश्वर ने आदम को निकाला था स्वर्ग से
हव्वा चिता पर जब चढ़ी तो ज़िंदा थी।
❐

(पांच)

राजपथ पर कोई नहीं रहता
यहाँ कोई नहीं बसता

वह राजपथ पर चली तो नष्ट हुई
मेरी भाषा कि मेरे गाँव की झाँकी

सैल्यूट के लिए उठे हाथों में जो रह गयी है मिट्टी
सैल्यूट लेते जूतों के पैरों में उतनी भी नहीं

इस रस्ते पर मत आओ कवि
यहाँ बिन पानी सब सून है...
❐

लम्हे ख़त्म नहीं होते पानी की बूँदों की तरह मिलकर बड़े हो जाते हैं

धूलभरी हवा उठती है तुम्हारे क़दमों के एकदम करीब से
एक समन्दर धुंधला सा निकल गया है छूते तुम्हें
किसी पेड़ ने अपनी पत्तियाँ गिरा कहा है कुछ तुमसे
रौशनी का एक उदास क़तरा उलझे बालों में ठहर गया है
और तुम चलती जा रही हो भीड़ भरी सड़क पर रास्ता बनाते

मैं कहाँ हूँ इस दृश्य में?
इतने चेहरों के बीच अपना चेहरा तलाशते खो गया हूँ एक बार फिर

पार्क है अनमने पैरों से दबी घास और सी सा के दूसरी तरफ़ जाने कौन है
इस तरफ़ तुम हो नीचे आने की प्रतीक्षा करती
बार-बार कहता है चौकीदार – वक़्त हो गया है बंद करना है दरवाज़ा
और तुम एक बेबस सी हँसी में देखती हो नीचे
फिर मोच लिए पाँवों में निकल पड़ती हो बाहर देखना था न कौन था उस तरफ़

मुझे बाहर करनी थी प्रतीक्षा
और तुम्हारे आने के पहले चले जाना था वहाँ से

भीगी हुई है आवाज़ तुम्हारी शरीर टूटता दर्द से होठों पर चुप्पियों की पपड़ी
चारों तरफ़ एक शोर अनेक आवाज़ों में एक ही बात : बहुत प्यार करता हूँ तुम्हें
गडमड्ड हुए चेहरे पिघलते हुए पसर जाते हैं तुम्हारी आत्मा पर प्लास्टिक से चिपकते
सारी त्वचा पर चकत्ते हैं लाल-लाल और आवाज़ें कहती हैं -देखो कितना प्यार करते हैं हम तुम्हें
एक खिड़की है खुली जिससे कूद जाना चाहती हो तुम वे आवाज़ें ग्रिल बनकर ढँक लेती हैं उन्हें

मैं खड़ा हूँ उस खिड़की के नीचे
ऊपर आना था मुझे?

यह तुम्हारी ही आवाज़ है?
वह मेरा ही नाम है जो पुकारा तुमने टूटती साँसों से?
तुम्हारी ही देह है यह चाँदनी सी पसरी हुई रौशनी भरती इस वीरान कमरे में?
यह तुम हो या कोई स्वप्न है जिसमें डूबता हूँ मैं जैसे शंख नदी के कुंड में डूबती हो कुष्ठ से गलती कोई देह
❐

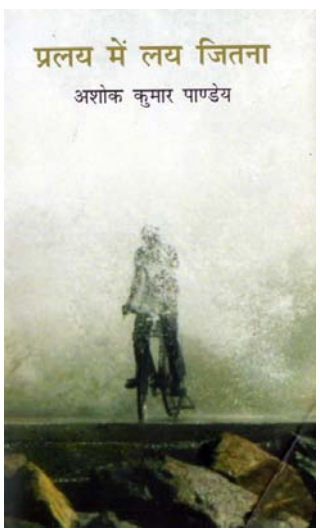

मैं चाहता हूँ करना प्यार

(मरीना त्यस्तेसावा का एक ख़त पढ़कर)

तुम देखती हो जब सौन्दर्य मैं तुम्हें देखता हूँ

समंदर किनारे की रेत पर चलते एक समंदर तुम्हारी आँखों में भी लहराता होगा
एक पहाड़ देखा है मैंने तुम्हारी आँखों में पहाड़ी नदी के किनारे चलते-चलते
ढलानों पर उतरते तुम्हारे पाँवों से बिखरते देखा मैंने मुक्ति का संगीत
और उस संगीत को अपनी आत्मा के ज्यूक बॉक्स में दर्ज़ किया नि:शब्द

जब तुम कविता पढ़ती हो तो एक कविता तुम्हारी उदासी लिखती है
हर्फ़ दर हर्फ़ पढ़ता हूँ वह कविता जैसे स्कूल की पहली कक्षा में कोई बच्चा पढ़ता हो बारहखड़ी

भयों को छोड़ आया था तुम तक आने से पहले
जैसे छोड़ आते हैं पेड़ पत्तियाँ बसंत के आने से पहले
पर दु:ख बचा रहा क्लोरोफिल सा, कामनाएँ टहनियों सी बची रहीं
बची रही उम्मीदें अधूरी छायाओं सी, सपने जड़ों की तरह तलाशते रहे जीवन
और इस तरह तुम तक पहुँचा मैं

मुझे नहीं आया प्यार करना
बचपन के सबकों में प्यार का कोई सबक नहीं था
मुझे आँसुओं से भरी आँखों को होठों से पी जाना आता था
आता था मुझे भीड़ भरी सड़क पर तुम्हारे भर की राह बना देना
मुझे सिखाया गया था आँसुओं का नमक अपने कन्धों की हड्डियों में घोल लेना
और मैंने सीखा गलना इस तरह धीमे-धीमे कि हड्डियों को भी पता न चले
मुझे धीरज सिखाया गया था और मैंने की प्रतीक्षा जैसे वेंटिलेटर पर करता है कोई मृत्यु की

आज़ादी मेरे लिए उन रास्तों का सफ़र थी जिन पर सत्ताएँ बिखरती हैं धीरे-धीरे
मैं चला और चाहा तुम भी चलो जैसे हवा के साथ चलती है बारिश

मैंने जब किया ख़ुद से प्यार तो उस ख़ुद में जाने क्या क्या शामिल होता गया

एक दुनिया थी दुख और अत्याचार से भरी और मुझे बुद्ध नहीं होना था
एक मुसलसल जंग थी चारों तरफ़ और नो मैन्स लैंड की ओर नहीं गयी मेरी निगाह
मैंने किया प्यार ख़ुद से तो उन तमाम दुखों से प्यार कर बैठा जिनके दाग़ मेरे पुरखों की सफ़ेद कमीज़ पर थे
ख़ुद से प्यार किया तो कर पाया तुमसे प्रेम

मैंने प्यार किया जैसे युद्ध में घायल सिपाही करता है ज़िन्दगी से प्यार
जैसे आख़िरी साँस लेता मरीज़ चिड़ियों से प्यार करता है
जैसे पिघलते पहाड़ करते हैं नदियों से प्यार
जैसे शहर की पुरानी इमारतें करती होंगी स्मृतियों से प्यार
जैसे सूखे के तीसरे साल कुँए की जगत से करता हो कोई प्यार

हाँ मेरी प्रिय नहीं जानता पर चाहता हूँ करना प्यार
जैसे बेसुरा कोई गाना चाहता हो कबीर के पद कुमार गन्धर्व को सुनते सुनते

❐

जुगनू, वनफूल और तुम

प्रतीक्षाओं के सुंदरवन में एक वनफूल तलाशता हूँ और न उसका रंग याद है अब न नाम
एक धुँधली सी छवि है कई बरस पुरानी तस्वीर जैसे धूल से अंटी
और तलाशता हूँ मैं उसे शाम से सुबह तक
रातों में खिलता था वह वनफूल और जुगनुओं की रौशनी में घुलमिल जाता था।

उसकी राह में एक बहुत पुरानी सी क़ब्रगाह थी जिसमें एक चौबीस बरस की औरत लेटी थी डेढ़ सौ बरस से
उससे थोड़ी पर वह पुरुष अट्ठाईस बरस का उतने ही वर्षों से अपनी प्रतीक्षाएँ समेटे
क़दमों की दूरियाँ और जैसे बीच में कोई नदी गहरी भंवरों वाली कमलिनियाँ तैरतीं उनमें और सूख जातीं
मैं उस पर एक पुल बना देना चाहता था रस्सियों का और गुजरना चाहता था साथ तुम्हारे कमलिनियाँ चुनते
याद है तुम्हें वह भँवर जिसमें डूबे तो उतराने की कोई कामना ही न हुई
इन दिनों उससे बचता हुआ गुज़रता हूँ रस्सियाँ थामे कमलिनियाँ सारी मुरझा गयी हैं और भँवरें ख़ामोश डूबती हैं अपने में ही

अँगुलियों पर रस्सी के निशान हैं या स्मृतियाँ हैं तुम्हारी

एक पहाड़ है ठिगना सा राह में वह नदी प्रपात बन गिरती उसके बीच पत्थरों पर दर्ज करती अपना आवेग
उन पर मिट चुके अनगिन निशानों में एक निशान तुम्हारे पांवों का भी है
थककर बैठता हूँ उसके किनारे तो जैसे कितने फूल खिल जाते हैं
एक हँसी घुलती जाती है लहरों में और मैं उस पर रख देता हूँ अपने पपडाये होठ
एक धार फूटती है सीने में आँखों से गुज़रती इतनी लहरें प्रलय सी उठती डूब जातीं
उन्हें साथ लिए निकलता हूँ उस मोड़ से आगे जहाँ थककर बैठ गयी थी तुम
बढ़ाता हूँ हाथ और फिर शून्य में वापस आता है वह ..

इस शून्य में दुनिया के सारे शब्द घुलेमिले हों जैसे मौन में बदलते

एक पेड़ है कई पेड़ों सा फैला थोड़ा आगे और उसके पार चाय के बागान जिनमें पगडंडियाँ तुम्हारी जुल्फों सी उलझीं
जहाँ चूम लिया था तुमने निर्द्वंद्व और वह हँसी चाय के दानों में खुशबू सी भर गयी थी
उँगलियाँ तुम्हारी थामी हैं मैंने और चल पड़ा हूँ पगडंडियाँ दिखाती हैं राह
यहाँ से आती थी महक वनफूल की
यहाँ से जुगनुओं की रौशनी दिखती थी
यहाँ से महकती थी देह तुम्हारी
यहाँ से होठ लरजते थे और पांवों में गति फूटती थी
यहाँ से फूटता था कामनाओं का एक अजस्र स्रोत जिसमें नहाकर बदल जाते थे हमारे रूप

मैं 'था' से हाथ छुड़ाए बढ़ता हूँ आगे
अँधेरी हैं सब राहें
वे जुगनू थे या तुम्हारी आँखें थीं
वनफूल था या चेहरा तुम्हारा..
❐❐❐

एफ-215, बाटला अपार्टमेंट्स, 43 आई.
पी. एक्सटेंशन, पटपड़गंज, नई दिल्ली
110092
मोबाइल 981865053,
08375072473
ईमेल ashokk34@gmail.com

कहानी

टच मी नॉट

गीताश्री

मुहल्ले की नई बहार थी वह। सबकी तरह आलोक को भी बहुत भाने लगी थी। वह चाहता था यह बसंत ठहर जाए। उसके घर में न सही, उसके आसपास। खूशबू आती रहे दूर से ही मगर, सामने हो चमन कोई कम तो नहीं।..की तर्ज पर वह इन दिनों सोचने लगा था। पर चंचल खुशबू थी। उड़ती फिर रही थी। वह टिकती कहाँ। वह किसी चित्रकार की तलाश में थी जिसके पास अपना बड़ा-सा स्टूडियो हो।

जहाँ रंग, ब्रश और बड़े-बड़े कैनवस रख सके। थोड़ा एकांत और सुकून हो, जहाँ जब तक चाहे बैठ कर पेंट कर सके। कच्चे रंगों की महक से किसी को समस्या न हो। कुछ ऐसे ही इच्छाएँ मुहल्ले के उजाड़ में उमड़-उमड़ कर आ रही थीं। ज़रूरतों से संचालित होने वाली इच्छाएँ बहुत भगाती हैं।

गली नं चार के सारे मकान मालिक उसे कमरा, हॉल छत किराये पर देने को तैयार थे। मगर वह बहार किसी गुप्ता जी, मिश्रा जी, शुक्ला जी के नसीब में नहीं, आलोक के नसीब में थी। गली नं पाँच के प्रॉपर्टी डीलर के साथ रोज़-रोज़ घूमते-भटकते-भागते एक दिन वह उसके स्टूडियो में धमक ही गई थी।

आलोक ने उसे देखा और बिना नखरे के स्टूडियो शेयर करने को तैयार हो गया। उसके स्टूडियो को उसने जिस तरस और प्रशंसा भरी निगाह से देखा, वह अपनी ही जगह से रश्क कर बैठा । पहली बार लगा कि उसने कोई बड़ा काम कर लिया है जिसके पास बहार खुद ठिकाना ढूँढ़ने आई है। इससे पहले कि बहार का मन बदल जाए, फटाफट आलोक ने दो कमरो में से एक उसे दे दिया और अपने सारे सामान समेत दूसरे कमरे में शिफ़्ट हो गया। छत कॉमन रखी गई ताकि बीच-बीच में खुली हवा में साँस ली जा सके। बहार यानी मिस बहार दीक्षित। नाम सुनते ही आलोक का यकीन पक्का हो गया कि दीक्षित लड़कियाँ महासुदंर होती हैं और क़िस्मत वालों को ही उनका संग साथ नसीब होता है। उसने महसूस किया वह भाग्यवादियों सरीखा दिखने लगा है।

वह अकेली हैं या दुकेली, इससे आलोक को कोई मतलब नहीं। वह बस अपनी नई साथी के साथ जीवन के बचे-खुचे सारे कलात्मक पल बिता देना चाहता था। पूरी तन्मयता से उसने बहार का स्टूडियो वैसे अरेंज किया जैसा पहली बार अपने लिए किया होगा। पत्नी ने कितनी बार हाथ बँटाना चाहा पर वह इस जगह से परिवार को यथासंभव दूर ही रखता। आख़िर दोनों की दुनिया भी अलग-अलग जो थी। पत्नी रोज शाम मंडी हाउस के चक्कर लगाने जाती या किसी न किसी नाटक के रिहर्सल में लगी रहती, ठीक उसी वक्त आलोक अपने स्टूडियो में ब्रश लेकर बैठ रहा होता था। हाथ में स्कॉच का ग्लास और ब्रश। पास में ही कुमार गंधर्व का गायन चलता रहता। अब इन सबके अलावा कुछ चीज़ें और जुड़ गई थीं। आलोक को लगा जैसे कैनवस पर कुछ नए रंग और इंट्रोड्यूस हुए हैं अभी-अभी। जो पहले कहीं नहीं थे।..किसी की पेंटिंग में नहीं। ज़ेहन में पिकासो का स्टूडियो कौंधा। अपनी अंतिम प्रेमिका के साथ मस्ती में थिरकते पिकासो और चारों तरफ बेतरतीब फैले ब्रश, रंग !

क्या सुखद संयोग है कि इतने साल दिल्ली के गढ़ी स्टूडियो में काम करते हुए पड़ोस में भी कोई बहार नसीब न हुई। महिला चितेरियाँ थीं पर वे सब नामचीन थीं और आलोक नया चेहरा... अपनी शैली की तलाश में भटकता हुआ..

यदाकदा गढ़ी के खुले प्रांगण में भटकता हुआ खुद को दिशाहीन पाता और मायूस-सा फिर से अपने दड़बेनुमा केबिन में घुस जाता। जल्दी से कुछ बड़ी-बड़ी पेंटिग बना कर, उन्हें बेच कर अपना अलग स्टूडियो बनाने की तड़प पल रही थी, जो एक झटके में पूरी हो गई।

दिल्ली की बड़ी गैलरी की मालकिन के साथ गढ़ी में चक्कर लगाता हुआ एक बड़े होटल का मालिक, आलोक की पेंटिंग पर इतना फिदा हुआ कि उसका पूरा केबिन खाली हुआ सो हुआ, होटल के हर कमरे के लिए छोटी पेंटिंग बनाने का बड़ा ऑर्डर तक मिल गया। वह भूला नहीं कि बीच में गैलरी ने कितना माल काटा होगा। उसे इतना माल ज़रूर मिला कि उसके बाद पलट कर अभाव का मुँह नहीं देखा। अब वह स्वतंत्र पेंटर था जो अपनी शर्तों पर पेंटिंग बनाता और बेचता था। बड़ी गैलरी से करार था जो उसकी पेंटिंग रिजनेबल दामों में ले लिया करती। वह धनधान्य से भरपूर था और परिवार भी मस्त। अपने स्पेस की चाहत भी पूरी हो गई थी।

कमी थी तो बस एक अदद प्रेमिका की। जो हर साधन संपन्न, नवधनाढ्य वर्ग के अधेड़ावस्था की तरफ बढ़ते मर्दों की होती है। कलाकार हो तो प्रेरणा अनिवार्य शर्त है जो प्रकृति और स्त्री दोनों के सान्निध्य से ही मिलती है। खुली छत पर ढेर सारे गमलों में हरे भरे पौधे उगा रखे है, लेकिन यह सचमुच की प्रकृति तो नहीं। प्रकृति की छायाएँ हैं। स्त्री का साथ घर में भी है पर उसकी प्रेरणा

एक्सपायर हो चुकी है। वैसे भी कलाकार आलोक की नज़र में घर की स्त्री गमलों में उगे पौधों की तरह होती है जो हरियाली का भ्रम देती है, छाया नहीं। उसे सघन छाया की नए सिरे से तलाश थी। क़िस्मत से वह करीब आ रही थी। उस खुली छत पर अब दो स्टूडियो आबाद थे। उस गली में और भी कलाकार थे, पर किसी के पास इतनी खुली जगह कहाँ। नई बसी कालोनी में मकान के मामले में भी आलोक ने बाज़ी मार ली थी। एक और बाज़ी उसके बेहद करीब आ चुकी थी। उसे बस अपने को बाज़ी के लिए तैयार करना था।

शाम को आलोक अपने स्टूडियो में साजो सामान समेत जम गया। सामने वाले स्टूडियो में बहार पहले से जमी ही थी। उसका मन पेंट करने में नहीं रम रहा था। बार-बार उसका मन होता कि वह उसके स्टुडियों में झाँक कर आए कि वह क्या कर रही है। अभी तक उसका पूरा काम देखा नहीं था। स्टूडियो में पेंटिंग रखवाते समय ज़रूर उसने महसूस किया कि वह बड़ी साइज की पेंटिंग बनाती है और जो थोड़ी भारी वज़न की थी। पता नहीं क्यों भारी थी। वह बस अनुमान लगा सकता था। उसका संसार देखने का मन हो रहा था। एक बार संसार देख ले फिर बातचीत शुरू की जा सकती है। सहज दोस्ताना बने तो दोनों साथ साथ आर्ट गैलरीज़ में प्रदर्शनी देखने जा सकते हैं। वह शहर में नई है, उसे महानगर में जमने के, बिकने के थोड़े हुनर सीखा सकता है। वह उधेड़बुन में था कि सामने से थकी हारी, उलझी हुई सी बहार चली आ रही थी। उसका चित्त प्रसन्न हो गया।

''हाय...कैसे हो। चाय मिलेगी...मैं धीरे-धीरे स्टूडियो में सारा इंतज़ाम कर लूँगी..फिलहाल आपकी पत्नी के हाथ की बनी चाय मिल जाए तो जन्म सफल हो जाए।''

आलोक उसकी इस बेतकल्लुफी पर फिदा हो गया। जमेगी इनके साथ। सामाजिक लग रही हैं।

''हाँ हाँ क्यों नहीं...माई प्लेज़र मैम...'' हँसते हुए आलोक ने घंटी बजाई। थोड़ी देर में आलोक की पत्नी नीना दौड़ती हुई ऊपर आई। तीनों ने एक साथ चाय पी। आलोक चाहता था कि नीना चाय देकर नीचे चली जाए। नीना टलने का नाम ही नहीं ले रही थी। थोड़ी ही देर में बहार और नीना आपस में इतने घुलमिल कर बातें करने लगे कि आलोक को लगा, वह इन दोनों के बीच अचानक अप्रासंगिक हो गया है।

दोनों को नज़दीक आने से थोड़ा खुश भी हुआ पर संशकित भी। दोनों आपस में सहेलियाँ बन गईं तो उसकी दाल नहीं गलेगी। उसे अरहर दाल की बढ़ती कीमतों से ज़्यादा अपनी दाल को लेकर चिंता हो रही थी। वैसे भी नीना दाल गलाने में माहिर। मुरादाबादी जो थी। किसी भी तरह की दाल को पका कर चाट की तरह कटोरियों में पेश कर देती थी। वह कई बार चिढ़ जाता था। दाल की चाट...। नीना परोसते समय दाल की चाट का ऐतिहासिक महत्त्व बताना नहीं भूलती...जिसे उसके कान ने आज तक नहीं सुनना चाहा।

उसे नीना से ही खतरा महसूस हुआ जो उसके अरमानों पर पानी फेर सकती थी। मन को बहुत समझाया कि शाम को नीना कहाँ होती है घर पर। देर शाम आएगी। तब तक का समय उसका। मैनेज कर लेगा। नीना के शोज आने वाले हैं, उसी में उलझ जाएगी। दिल को बहलाता हुआ वह अपने कैनवस पर खो गया।

नीना से बहार की ''हाय हैल्लो'' रोज़ की बात हो गई थी। नीना मंडी हाउस जाते समय छत पर आकर बहार को हैल्लो करना नहीं भूलती। बाद में अति व्यस्त होती चली गई तो यह सिलसिला भी खत्म हो गया। सब अपने काम में डूब गए। बहार का ज़्यादा समय आलोक के साथ बीतने लगा। आलोक को बहार की सबसे अच्छी बात लगी कि वह वोदका पी लेती है। बस क्या था। व्हिस्की की जगह वोदका ने ले ली। रोज़ वोदका सेवन शुरू। फ्रीज में बर्फ जमाने की ज़िम्मेदारी खुद आलोक ने ले ली। नीना एकाध बार चकित होकर देखती कि इतनी तत्परता से आलोक बर्फ कभी नहीं जमाता था। अब ट्रे में पानी भर कर खुद रखने लगा है। उसे छत पर जाने का समय भी नहीं मिला। कई दिन हो गए थे बहार से ''हाय हैल्लो'' किए हुए। उसने आलोक से ही पूछ लिया..वह फटाक से जवाब देता जैसे बहार ने उसे प्रवक्ता नियुक्त कर रखा हो। बहार के शोज के बारे में, बहार के लिए गैलरी बुक करवाने का जिम्मा, गेस्ट का जिम्मा, बायर्स की लिस्ट...सब आलोक उससे शेयर करने को तत्पर। यहाँ तक कि बहार कैनवस पर जो मेटेरियल यूज़ करती थी, जिससे उसकी पेंटिंग भारी हो जाती थी, उसका इंतज़ाम भी आलोक के जिम्मे। आलोक के दिन गद्‌गद् चल रहे थे। बस बहार तक उसकी भावनाएँ खुल कर नहीं पहुँच पा रही थीं। सीधे-सीधे क्या कहता। एक ही फील्ड के लोग। सहजता से घटित हो तो सुंदरता बनी रहती है, आलोक सोचता और बहार से कुछ-कहते कहते रुक जाता। बहार रोज़ नीना के बारे में ज़रूर बात करती। जैसे क्या करती है, किस-किस नाटक में, कैसी भूमिकाएँ की। कहाँ मिली.. कैसी है, उसे क्या-क्या पसंद है। उसकी दोस्त हैं या नहीं..। ऊपर आज कल क्यों नहीं आती...आदि आदि ढेरों सवाल। कई बार वह खीझ जाता। नीना को फोन करके कह देता-''भई, कोई आपको मिस कर रहा है, बात कर लें आप।''

बहार उसे शाम के वोदका सेशन के लिए आमंत्रित करना चाहती थी। नीना उपलब्ध नहीं थी, उसे अपना नाट्य ग्रुप के साथ असम के दौरे पर जाना पड़ा। आलोक ने चैन की साँस ली। वह बहार से खुल कर फ्लर्ट कर सकता था। कोई रोकटोक नहीं, कोई भय नहीं..खुल कर अपनी बात कह सकता था। बहार बुरी तरह रिएक्ट करना चाहे तो भी किसी का भय नहीं। यह मुफीद मौका है, अपनी बात कह देने का। उसने नीना और ईश्वर दोनों को इस सुअवसर के लिए धन्यवाद दिया।

शाम को वोदका सेशन पर आलोक ने घुमा फिरा कर बातें छेड़ी। बहार ने समझा, वह चुहल कर रहा है। वह मज़े लेने लगी। आलोक को छेड़ती रही। आलोक की दाल की हाँडी खदक रही थी। यह रोज़ का क्रम हो गया। नीना के लौटने तक दोनों और करीब आ गए थे। दोनों को ये अहसास नहीं था कि बगल की बहुमंज़िली इमारत की बालकनी से कोई उनकी चुहल पर गौर फरमा रहा है। जो देख रहा था, यूँ कहे, देख रही थी, उसे मालूम था कि नीना शहर से बाहर गई हुई है। वहाँ क़िस्से बुने जा रहे थे।

नीना लौट कर आ गई। उसके आते ही जैसे धमाका-सा हुआ। वह मीन माइंडेड

नहीं थी। इसीलिए आलोक और बहार की निकटता से उसे कोई समस्या नहीं थी। वह दोनों की निकटता को प्रोफेशनल निगाह से देखती थी। उसके पीछे क्या गुल खिला है, इसका अंदेशा तक नहीं था उसे। नीना ने उसी शाम घर में बम फोड़ दिया। आलोक हतप्रभ रह गया। उसे लगा, नीना ने कोई कांड किया तो वीराना आते देर नहीं लगेगी। बहार हासिल नहीं तो क्या हुआ, बहार सामने तो है। नीना ने फरमान जारी कर दिया कि वो लड़की कहीं और स्टूडियो बना ले। यह घर खाली करना पड़ेगा। उस शाम नीना ने क्या-क्या नहीं कहा। आलोक हक्का बक्का सुनता रहा। वह चाहता तो डटकर मुकाबला कर सकता था पर किसके सहारे करे। बहार का माइंड वह समझ नहीं पाया था। नीना दोनों को ग़लत समझ रही है। उसे अफसोस इसी बात का कि नीना का इल्ज़ाम सही नहीं है। सही होता तो हर जुल्म सितम सह लेता। कोई न कोई रास्ता निकालता। बहार को किसी दोस्त की छत पर स्टूडियो दिलवा देता। लेकिन अब बहार उसके हाथ से निकल जाएगी, कहाँ जाएगी पता नहीं। कितना कायर समझेगी उसको जो अपनी बीवी से डर गया। किस बात का कलाकार। उसे इतनी फ्रीडम नहीं। गुस्से में दनदनाता हुआ वह ऊपर गया। बहार के हाथ गीले थे। प्लास्टर आफ पेरिस के सफेद गोले बना रही थी। कैनवस पर उभार के लिए चिपकाने वाली थी, आलोक को ऐसा लगा।

उसका माथा इतना भिन्नाया हुआ था कि लगा, उसी गोले से अपना सिर फोड़ ले या नीना का फोड़ दे। सारे कैनवस पर प्लास्टर फेर दे। बहार उसके हाथ से निकलने वाली है। पहले की तरह वीरानी से भर जाएगा वह। सुख के दिन इतने कम क्यों होते है, सोचते ही हलक सूख गया।

''मैम...मेरी पत्नी को शक़ है कि हमारे बीच कुछ चल रहा है। उसे किसी ने कंपलेंट कर दिया है। वह बहुत गुस्से में हैं और वह चाहती है कि....''

बहार के हाथ रुक गए। मग में हाथ डाल कर धो लिया। उसके चेहरे पर कोई भाव नहीं आया। मानों कोई नई या अनहोनी बात न हो। या वह इस तरह के आरोपों की आदी रही हो।

आलोक को लगा, वह चीखेगी, खंडन करेगी, नीना को भला बुरा कहेगी या कुछ भी रिएक्शन हो सकता था। कलाकार भी तो सामान्य इनसान ही होते हैं।

''आप नीना को बुलाइए...मैं उनसे कुछ कहना चाहती हूँ...''

नीना वहाँ धमक चुकी थी। वह तमतमा रही थी। उसका बस चलता तो बहार को हाथ पकड़ कर बाहर कर देती।

नीना का गुस्सा देख आलोक दूसरी तरफ घूम गया। बहार और नीना आमने सामने।

''नीना...

तुमने सोचा कभी कि मैंने एक पुरुष के साथ स्टूडियो साझा क्यों किया। एक अकेली लड़की इतना साहस कैसे कर गई। मुझे बहुत मिलते रहे हैं ऐसे जगहों के न्योते। मैं यहाँ आई, जहाँ कोई स्त्री हो। मुझे तुम्हारे पति में रत्ती भर दिलचस्पी नहीं। सच कहूँ तो मुझे मर्दों के साथ अकेले काम करने में कोई दिक़्क़त नहीं होती। होती है तो....'' कुछ पल के लिए रुकी।

उसका स्वर शांत, उत्तेजनारहित था। आलोक उसके इस अदा पर भी फिदा हो रहा था।

''सुनो...मेरी दिलचस्पी नीना में है। नीना....समझ गईं न। आई एम इंट्रेस्टेड इन यू। ऑनली वीमेन, नो मेन इन माई लाइफ। मैं तुम्हारी तरफ हाथ बढ़ाना चाहती हूँ...वांट टू बी अ रिलेशनशीप विद यू।''

बहार अपना हाथ छोटे तौलिए से पोंछ रही थी। चेहरे पर सुकून की छाया। सच बोलने के साहस की रेखाएँ चमक रही थीं।

आलोक को लगा बिजली के सारे तार टूट कर उसकी छत पर आ गिरे हैं और सारे कैनवस पर चिंगारियाँ बरस रही हैं। वह चौतरफा तारों से घिर गया है। उसे कुछ दिखाई देना बंद हो गया है। प्लास्टर के गोले हवा में उड़ रहे थे।

❐❐❐

फ़्लैट नं. - डी-11442,
गौर ग्रीन एवेन्यू, अभय खण्ड-2,
इंदिरापुरम, गाज़ियाबाद,
उप्र, 201014
मोबाइल 9818246059,
8860080245
ईमेल geetashri31@gmail.com

ग़ज़ल

लोकेश कुमार सिंह 'साहिल'

पुरानों को भुलाने में लगा है
नए रिश्ते बनाने में लगा है
मेरा दिल भी ख़रीद की बात सुनकर
मुझी को आज़माने में लगा है
कोई सौदा हो कारोबार-ए-दिल का
ख़सारा जीत जाने में लगा है
मेरे अपनों के कड़वे पेचकस को
ज़माना भी घुमाने में लगा है
पुरानी धुन को बेतरतीब कर के
नया मौसम सुनाने में लगा है
बहुत मुद्दत से जो सोया नहीं था
वो अब सपने सजाने में लगा है
ये आँसू भी तमाशा हो गए है
जिसे देखो बहाने में लगा है
भंवर 'साहिल' से टकराने लगा अब
ये बच्चा घर बनाने में लगा है

❐

ज़मीं से दूर होता जा रहा हूँ
मैं अब मशहूर होता जा रहा हूँ
ज़रा सी बात था दिल में किसी के
मगर नासूर होता जा रहा हूँ
बहुत हैं दोस्त इस महफ़िल में मेरे
बहुत मजबूर होता जा रहा हूँ
उजालों में ही बस दिखता हूँ सब को
तो क्या बेनूर होता जा रहा हूँ ?
निभाते ही नहीं अपने भी जिसको
मैं वो दस्तूर होता जा रहा हूँ
मुझे कुछ तालियाँ क्या मिल गयी हैं
बड़ा मगरूर होता जा रहा हूँ
दिखाता फिर रहा था ऐब सबको
सो चकनाचूर होता जा रहा हूँ
लुटेरे बन रहे मालिक हैं मेरे
मैं कोहीनूर होता जा रहा हूँ
मुसलसल तीरगी झेली है मैंने
सरापा नूर होता जा रहा हूँ
दिलों में इस कदर सबके हूँ 'साहिल'
कि सबसे दूर होता जा रहा हूँ

❐

सी-104, भागीरथ पथ, श्याम नगर,
जयपुर 302019
मोबाइल 9414077820

आलोचना

जीत और गति की आकांक्षाओं के बीच गुम होती संवेदना

राकेश बिहारी

(कहानीकार और आलोचक राकेश बिहारी ने वैब पत्रिका 'समालोचन' हेतु कई कहानियों पर एकाग्र आलोचनात्मक लेख लिखे हैं, जो अभी तक प्रिंट मीडिया में प्रकाशित नहीं हुए हैं। राकेश जी की सहमति से हम उन लेखों को यहाँ 'समालोचन' से साभार प्रकाशित करना शुरू कर रहे हैं।)

हंस जनवरी 2014 में प्रकाशित आकांक्षा पारे काशिव की कहानी 'शिफ्ट+कंट्रोल+ऑल्ट=डिलीट' अपने शीर्षक के कारण सबसे पहले हमारा ध्यान खींचती है। सूचना और संचार की क्रान्ति के बाद के समय के यथार्थ से परिचित कोई भी व्यक्ति, हो सकता है फार्मूला या समीकरण के प्रारूप में दिये गए इस शीर्षक का ठीक-ठीक अर्थ न समझता हो पर, इतना तो अवश्य ही समझ जाएगा कि यह शब्दावली कंप्यूटर की दुनिया से आई है। कंप्यूटर जिसने अपने होने से पूरी दुनिया को बदल-सा दिया है, कैसे एक आविष्कार से सुविधा, सुविधा से उत्पाद और उत्पाद से आदत या लत में बदलते हुये मनुष्य नामधारी जीवों को क्रूरता की पराकाष्ठा तक पहुँचा सकता है, यह कहानी इस हकीकत को समझने का एक ज़रूरी माहौल उपलब्ध कराती है। यह कहानी अपनी भाषा और कथ्य के बाने में जिस तरह खुद को संप्रेषित करती है, वह कई अर्थों में दिलचस्प, जटिल और आधुनिक है। असहज करने वाली परिस्थितियों को अत्यंत ही सहजता से विवेचित करती यह कहानी पाठकों से एक खास तरह के आधुनिक यथार्थ बोध की माँग करता है। लेकिन बावजूद इसके प्रथम शब्द से लेकर आख़िरी शब्द तक पठनीयता को अक्षुण्ण बनाए रखते हुये जिस तरह यह कहानी समकालीन शहरी जीवन के जटिल यथार्थों को रेखांकित कर जाती है वह अद्‌भुत है।

काम के प्रति लगाव या निष्ठा जीवन का एक आवश्यक मूल्य है, लेकिन यही एक निष्ठा जब एडिक्शन की हद तक किसी व्यक्ति के जीवन में शामिल हो जाये तो संवेदनाएँ न सिर्फ क्षरित होती हैं बल्कि मनुष्य अपने होने की सारी शर्तों का अतिक्रमण करते हुये क्रूरता से भी दो कदम आगे हैवानियत की हदों को भी पार कर जाता है। कथानायक सुदीप मलिक के जीवन की परिणति बतौर पाठक हमें स्तब्ध और उदास तो करती ही है, उसके व्यक्तित्व में उतर आया ठंडापन हमें भी जड़ कर देता है। भाषा सिर्फ विचारों की वाहिका ही नहीं होती बल्कि संवेदनाओं के सम्प्रेषण में भी उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जाहिर है भाषा की उपस्थिति मनुष्य और मनुष्यता को गहरे प्रभावित करती है। एक रचनात्मक और प्रवाहमान भाषा के साथ ही समाज में स्त्रियों की सम्मानजनक स्थिति हमारे भीतर की नमी को बचाए रखती है। यही कारण है कि किसी खास संस्कृति की विशेषताओं को नष्ट करने के लिए सबसे पहला आक्रमण वहाँ की भाषा और स्त्रियों पर ही किया जाता है। प्रस्तुत कहानी में इन दोनों तरह के आक्रमणों को आसानी से रेखांकित किया जा सकता है।

कंप्यूटर को यथोचित आदेश दिया जा सके इसके लिए एक कूट भाषा का आविष्कार हुआ। लेकिन वही कूट भाषा जब हमारी दैनंदिनी का हिस्सा हो जाए तो? यह प्रश्न ऊपर से चाहे जितना सहज लगता हो अपने भीतर तेज़ रफ़्तार बदलते समय की कई सांघातिक व्यंजनाओं को छुपाए बैठा है। यही कारण है कि पठनीयता के गुण के होते हुये भी यह कहानी अपने पाठकों से एक अतिरिक्त शब्द-सजगता की माँग करती है। कहानी का पहला पैरा जो सुदीप मलिक का इकबालिया बयान है, में गैरज़रूरी भाषाई व्यवहारों से उत्पन्न क्रूरता से दो कदम आगे का ठंडापन व्याप्त है। तभी तो सुदीप मलिक जिसेन अपनी पत्नी की हत्या कर दी है, अपने इस कृत्य को 'कुछ नहीं करना' कहता है। उसके इस इक़बालिया बयान का एक हिस्सा आप खुद देखिये -

''मेरे कंसोल के बटन ने आखिरी सोल्जर के हाथ में गन थमाई और... आखिरी टेरेरिस्ट बस खत्म होने को था उसने मेरे हाथ से कंसोल छीन लिया। आप समझ रहे हैं? समझ रहे हैं आप।.. मैं गेम जीत रहा था और उसने कंसोल छीन लिया। वह लैपी शट डाऊन करने के लिए झपटी, उसे म्यूट करने की सारी कोशिश के बीच मैंने... सिर्फ कंप्यूटर में फाइल हटाने का परमानेंट आप्शन यूज किया, शिफ्ट+कंट्रोल+ऑल्ट=डिलीट।''

समझ रहे हैं आप? कंप्यूटर की भाषा में सुदीप मलिक क्या कहा गया यहाँ? आइए उसके इस बयान को डीकोड करते हैं। दरअसल वह एक कंप्यूटर गेम खेलने में इतना मसरूफ़ था कि उसे घर परिवार, आस-पड़ोस, लोक-समाज किसी की चिंता नहीं थी। या यूँ कहें कि इन सबसे बेख़बर था वह। लगातार छः घंटे तक संदीप की उपेक्षा और 'काउंटर स्ट्राइक' नामक कंप्यूटर गेम से आने वाले शोर-शराबे से ऊब कर उसकी पत्नी ने पहले उससे आवाज़ कम करने की गुज़ारिश की थी और उसके नहीं सुनने पर उठ कर लैपटॉप बंद कर दिया था... नतीजा? उसे 'म्यूट' करने की सारी कोशिशों के बीच कंप्यूटर में किसी फाइल को परमानेंटली डिलीट करने के कमांड का इस्तेमाल। यानी चुप न होने और गेम में बाधा डालने के एवज में पत्नी की हत्या! कितना क्रूर है यह सच! लेकिन दूसरे अनुशासन की भाषा पाठक के मन में वह प्रभाव शायद उत्पन्न

नहीं करती जो चुप कराने की कोशिश और हत्या जैसे शब्द कर पाते।.. लेकिन इस भाषा का प्रयोग कहानी या कहानीकार की असफलता नहीं है। कारण कि कहानी महज हत्या के बोध को संप्रेषित नहीं करना चाहती। यदि कहानी का उद्देश्य सिर्फ इतना भर होता तो यह एक आम अपराध कथा हो कर रह जाती। यहाँ कहानी हत्या में नहीं, हत्या के बाद हत्यारे के भीतर व्याप्त उस क्रूर ठंडेपन में है जो उसे हत्या की त्रासदी को समझने तक नहीं देता और वह अदालत में कहता है – ''मैंने कुछ नहीं किया। मैं बस गेम जीतने ही वाला था''

भाषा की जीवंतता यदि हमारे संवेदनाओं की वाहिका होती है तो उसका मशीनी हो जाना सिर्फ असंप्रेषण की स्थिति ही नहीं पैदा करता बल्कि उससे कहीं बहुत आगे जाकर हमें असंवेदनहीन बना देता है। यह कहानी उन्हीं परिस्थितियों का ज़िंदा बयान है। लेकिन हाँ, लेखिका ने कंप्यूटर से किसी फाइल को परमानेंटली डिलीट करने के लिए जिस कमांड का यहाँ उल्लेख किया है वह तकनीकी रूप से ग़लत है। यह कमांड 'शिफ्ट+कंट्रोल+ऑल्ट' नहीं बल्कि 'शिफ्ट+डिलीट' होता है। इसलिए कायदे से इसे 'शिफ्ट+डिलीट=परमानेंट डिलीट' लिखा जाना चाहिए था। चूँकि यह कथन/समीकरण कहानी का बीज वाक्य जैसा है और इसे ही कहानीकार ने शीर्षक भी बनाया है, इसका ध्यान रखा जाना चाहिए था। गौरतलब है कि भूमंडलोत्तर यथार्थ की जटिलताओं को अभिव्यक्त करने में पारंपरिक शब्दावली कई बार असमर्थ मालूम पड़ती है। ऐसे में भावों की ठीक-ठीक अभिव्यक्ति के लिए साहित्येतर अनुशासनों से शब्द लेकर आने पड़ते हैं। भाषा और साहित्य की समृद्धि के लिए यह आवश्यक भी है, लेकिन इस क्रम में पर्याप्त शोध ज़रूरी है ताकि तथ्यगत जानकारियाँ पाठकों तक अपने उचित प्रारूप में पहुँच सकें।

सूचना और संचार की अभूतपूर्व क्रान्ति से उत्पन्न माहौल के बीच नई आर्थिक नीति के नाम पर अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण की जो शुरुआत नब्बे के दशक में हुई थी, उसके बाद से सामूहिकता का लगातार संकुचन होता गया है। वर्गविहीनता जो कभी प्रगतिशील आँखों मे किसी खूबसूरत

संदर्भः कहानीकार आकांक्षा पारे काशिव की 'हंस' जनवरी 2014 में प्रकाशित कहानी 'शिफ्ट+कंट्रोल+ऑल्ट=डिलीट'

सपनों की तरह जगमगाता था शनैः शनैः उसकी चमक फीकी पड़ती गई है और उसके समानान्तर सामाजिकता के लगातार क्षीण और दुर्बल होने की प्रक्रिया जारी है। सामाजिकता के विरुद्ध वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षाओं के पल्लवन की इस नियति के मूल में जिन दो शब्दों की बहुत बड़ी भूमिका है, वे हैं- जीत और गति। उपलब्धि को जीत और प्रगति को गति में रिड्यूस कर दिये जाने का ही यह नतीजा है कि तथाकथित सफलता और वैयक्तिकता के आभिजात्य खोल में छुपी निजी महत्वाकांक्षाएँ हमारे भीतर एक संवेदनहीन क्रूरता को बर्फ की सिल्ली की तरह जमाये जा रही है। हर कीमत पर 'जीत' और 'गति' हासिल करने की इच्छाओं की क्रूरतम नियति की आशंकाओं को इस कहानी के मुख्य पात्र सुदीप मलिक के व्यवहारों और उसके इकबालिया बयान के हर्फ-हर्फ में महसूस किया जा सकता है। सुदीप मलिक के भीतर लगातार पल रही जीत की आकांक्षाओं और उस संभावित जीत की दहलीज पर पहुँचते-पहुँचते रह जाने की स्थिति के बाद उत्पन्न संवेदनात्मक त्रासदी से गुजरते हुये मुझे मैनेजमेंट गुरु शिव खेड़ा की बहुचर्चित-बहुप्रचारित किताब 'यू कैन विन' / 'जीत आपकी' की लगातार याद आती रही। क्या इसके पीछे येन केन प्रकारेण जीत हासिल करने की सीख देने वाली उन अत्याधुनिक व्यावसायिक सूक्तियों का कोई हाथ नहीं जो चीख-चीख कर कहती हैं – 'विनर्स डोंट डू डिफरेंट थिंग्स, दे डू द थिंग्स डिफरेंटली'? दोष उन सूक्तियों का हो कि नहीं, लेकिन उनके बहाने हमारे भीतर रोप दी गई उन महत्त्वाकांक्षाओं को तो समझना ही पड़ेगा न जो जीत के सिवा कुछ भी न देखने की खुदगर्ज मानसिकता के लिए खाद-पानी का काम करते हैं! आकांक्षा पारे काशिव की यह कहानी भूमंडलोत्तर समय में व्याप्त उन्हीं मानसिकताओं की शिनाख़्त और पड़ताल पर ज़ोर देती है।

अर्थव्यवस्था के उदारीकरण ने सपनों के चमचमाते रैपर में जिस तरह अमरीका परस्ती को पिछले दरवाज़े से हमारे घरों में दाखिल कर दिया है, वह इस पूरी व्यवस्था का एक बहुत बड़ा उपोत्पाद है। भारतीय बाज़ार के खुलने और भारतीय प्रतिभाओं के निर्यात के बीच व्यावसायिक गतिविधियों के बहाने सभ्यता और इतिहास का अमरीकी पाठ जिस तरह हमें घुट्टी में पिलाया जा रहा है वह किसी मीठे और धीमे ज़हर जैसा है। गौर किया जाना चाहिए कि सुदीप 'काउंटर स्ट्राइक' नामक जिस कंप्यूटर गेम को खेलने में व्यस्त है उसके तहत स्क्रीन पर धड़ाधड़ यू एस सोल्जर टेरेरिस्टों का सफाया करते हैं। दुनिया में आतंक का सुनियोजित संजाल बिठानेवाला एक देश कैसे खेल के उपकरणों तक में खुद को आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष का स्वघोषित योद्धा साबित किए जा रहा है, सिर्फ देखने-सुनने या विश्लेषण भर का नहीं बल्कि चिंता का विषय है। यह किसी देश की अर्थव्यवस्था के विकास का मॉडल भर नहीं बल्कि आर्थिक क्रिया-कलापों के बहाने दूसरे देशों की युवा प्रतिभाओं के मानसिक अनुकूलन की सुनियोजित रणनीति का हिस्सा है। सच है कि इतिहास का पुनर्लेखन सिर्फ इतिहास के पन्नों तक ही सीमित नहीं होता बल्कि उसका एक बड़ा और प्रभावी हिस्सा किसी सूक्ष्म रणनीति के तहत जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों से गुज़रता हुआ कब हमारे दैनंदिनी का हिस्सा बन जाता है, हमें पता ही नहीं चलता।

भूमंडलीकरण, जिसकी शुरुआत सूचना और संचार की कल्पनातीत क्रान्ति के बहाने हुई थी, को नवउदारवादी आर्थिक एजेंडे को लागू किए जाने की राजनैतिक-आर्थिक विवशताओं और एक रचनात्मक प्रतिपक्ष की विकल्पहीनता ने लगभग एक सर्वस्वीकृति की दशा में पहुँचा-सा दिया है। इस नई व्यवस्था ने वस्तु, पर्यावरण और मनुष्य के

बीच के सारे सम्बन्धों को पुनर्परिभाषित करने का काम किया है। विशुद्ध व्यावसायिक उपकरणों से की गई सभ्यता और समाज की यह पुनर्समीक्षा हर वस्तु को उत्पाद और हर व्यक्ति को उपभोक्ता में रिड्यूस कर देती है। और फिर मनुष्य से उपभोक्ता में तब्दील होते ही हमारी पूरी दृष्टि बदल जाती है। हम चीज़ों को संवेदनाओं से नहीं उसमें निहित सुविधाओं के मूल्य से आँकना शुरू कर देते हैं। सुविधाएँ पहले हमारा शौक बनती है, फिर ज़रूरत, फिर आदत और अंततः लत। विकास के वायदों की शक्ल में कदम-दर-कदम आगे बढ़ती यह व्यवस्था दरअसल कहीं न कहीं अंतरालों के निर्माण का कार्य करती है। अंतरालों का निर्माण यानी दूरियों का बढ़ना। उल्लेखनीय है कि आज यह दूरी सिर्फ वर्ग या वर्ण की ही नहीं रही बल्कि उससे कहीं बहुत आगे 'वर्क प्लेस' और घर के बीच भी तैयार हो गई है। नतीजतन लेट सीटिंग ज़रूरी या मजबूरी नहीं लत हो जाती है। छः-सात अंकों का पे पैकेज चाहे जितनी भी सुविधाएँ मुहैया करा दें, घर को मल्टीनेशनल कंपनी का दफ्तर नहीं बना सकता। संबंध और संवेदना जो कभी घर का आधार हुआ करते थे, को जब सुविधाओं के आकलन के अर्थशास्त्र ने विस्थापित कर रखा हो फिर घर जाने की जरूरत ही क्या? सेंट्रली एयर कन्डीशंड दफ्तर, दिन भर तुलसी, लेमन और आमण्ड फ्लेवर की चाय, और फिर रात को 5 एमबीपीस की रफ़्तार से गेम और फिल्म डाउनलोड करने की सुविधा।.. यह सब घर पर कहाँ! नतीजा... जानबूझ कर घर न जाने की कोशिश... लंबी लड़ाई के बाद हासिल किया गया आठ घंटे के काम का अधिकार कभी इस तरह अर्थहीन हो जाएगा शायद ही किसी ने सोचा हो। ये सारी चीज़ें किस तरह बड़ी बारीकी से हमें भीतर से खोखला किए जा रही है, उसे इस कहानी के माध्यम से गहरे समझा जा सकता है।

उल्लेखनीय है कि यह कहानी सुदीप मलिक के इकबालिया बयान से शुरू होकर उसे फाँसी दिये जाने के पूर्व उसकी अंतिम इच्छा पूछे जाने तक चलती है। बीच में गवाहों के रूप में उसके सहकर्मियों, दोस्तों, कंपनी के एच आर मैनेजर और एक महिला मित्र के बयान और अदालती कार्यवाही के बीच इलेक्ट्रानिक मीडिया पर इस घटना को लेकर की जानेवाली बहस दर्ज हैं जिनसे सुदीप मलिक जैसे लोगों की दिनचर्या, आई टी कंपनी के वर्किंग कल्चर और खबरों के उत्पाद में बदल दिये जाने की व्यावसायिकता का पता चलता है। नई तकनीक द्वारा पुराने आविष्कारों और उपकरणों को आउटडेटेड कर देने की पूरी प्रक्रिया को मानव व्यवहारों के माध्यम से समझाते हुये यह कहानी मौखिक संवादों की जरूरत को भी रेखांकित करती है जिसे आभासी दुनिया के नए विकल्प यथा- फेसबुक, ट्वीटर, वाट्सएप आदि लगातार सीमित और संकुचित करते जा रहे हैं। सम्प्रेषण को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए कभी आधुनिक भाषा का आविष्कार हुआ होगा, लेकिन तकनीकी जगत् के नए आविष्कारों का बेजा इस्तेमाल हमें फिर से चित्रलिपि और कूट भाषा के उस युग में ले जाना चाहता है जहाँ हम संवेदनाओं से खाली हो जाने को अभिशप्त हो जाते हैं।

इन सबके बीच जो एक और महत्त्वपूर्ण बात इस कहानी में है वह है- स्त्री और पुरुष पात्रों की मानसिक बुनावट और उनके व्यवहारगत अंतरों का उद्घाटन। गौरतलब है कि अदालत में गवाह के रूप में पेश हर पुरुष पात्र को इस बात पर आश्चर्य है कि सुदीप मलिक ने अपनी पत्नी अनुरीता की हत्या कर दी। जबकि इसके उलट सुदीप की एक पूर्व महिला मित्र को उसके इस व्यवहार/अपराध पर कोई आश्चर्य नहीं होता, बल्कि उसके आश्चर्य का कारण तो यह है कि अनुरीता ने सुदीप जैसे लड़के से शादी कैसे कर ली? एक मर्द की व्यावसायिक व्यस्तताओं (?) की कीमत उसके दोस्त या सहकर्मी को नहीं उसके परिवार को ही चुकानी पड़ती है। यही कारण है कि स्त्रियाँ ऐसी वृत्तियों को आसानी से पहचान लेती हैं।

इंडिया टुडे की साहित्य वार्षिकी (1997) - 'शब्द रहेंगे साक्षी' में प्रकाशित पंकज मित्र की कहानी 'पड़ताल', जिसे मैं भूमंडलोत्तर कथा पीढ़ी की पहली कहानी मानता हूँ, पर बात करते हुये मुझे हमेशा लगता रहा है कि बाज़ारवादी शक्तियाँ कैसे हमारे निजी और सामाजिक जीवन-व्यवहार को सुनियोजित और चरणबद्ध तरीके से बदलती हैं उसे समझने के लिये इसे रेणु की 'पंचलाइट' और संजय खाती की 'पिंटी का साबुन' के साथ जोड़कर समझा जा सकता है। अब मैं आकांक्षा पारे काशिव की इस कहानी को उसी शृंखला की चौथी कड़ी के रूप में रख के देखना चाहता हूँ। बाज़ार का सफर कौतूहल से शुरू होकर, स्पर्धा और उपेक्षा से होते हुये कैसे हत्या तक पहुँच जाता है, उसे इन कहानियों के क्रमबद्ध अध्ययन से समझा जा सकता है। उल्लेखनीय है कि नए उत्पाद का आकर्षण हमें हर कीमत पर उसे हासिल करने को प्रेरित करता है। 'पिंटी का साबुन' कहानी में साबुन की एक नई टिकिया को हासिल करने के लिये छोटे भाई द्वारा बड़े भाई का सिर फोड़ देना बाज़ार प्रदत्त इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। स्पर्धा की यह स्थिति 'पड़ताल' तक आते-आते उपेक्षा में बदल जाती है जहाँ एक व्यक्ति की आत्मकेंद्रित प्रवृत्तियाँ इतनी सघन हो उठती हैं कि वह निजी हितों की पूर्ति के उपक्रम में रिश्ते, परिवार और समाज की ऐसी उपेक्षा करने लगता है कि उसे किसी के जीने-मरने की भी परवाह नहीं रहती। 'पड़ताल' के सोलह वर्षों के बाद आज 'शिफ्ट+ कंट्रोल+ ऑल्ट= डिलीट' में वर्णित स्थितियाँ उपेक्षा से किसी के मर जाने से भी कई कदम आगे, आत्मकेंद्रित ज़िंदगी में पत्नी के एक मामूली हस्तक्षेप पर उसकी हत्या तक जा पहुँची है। यह हत्या तब और ज्यादा तकलीफदेह और चिंता का कारण बन जाती है जब एक निश्चित समयान्तराल के बीत जाने के बाद भी हत्यारा उस त्रासदी को नहीं समझता और अपनी अंतिम इच्छा पूछे जाने पर एक बार फिर इन्टरनेट देखना चाहता है ताकि वह एक खास कंप्यूटर गेम का नवीनतम भाग देख सके। संवेदनाओं के प्रस्तुतीकरण की इस तीव्रगामी प्रक्रिया पर नए सिरे से सोचे जाने की जरूरत इस कहानी को महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय बनाती है।

❐❐❐

एन.एच.-3/सी-76, एन. टी. पी. सी.,
विंध्याचल, पोस्ट -विंध्या नगर, जिला
सिंगरोली, मप्र 486885
मोबाइल 9425823033
ईमेल brakesh1110@gmail.com

क़िस्सागिरी

सरवाइवल ऑव द फिटेस्ट

गौतम राजरिशी

('तद्भव' के अप्रैल 2015 अंक में प्रकाशित कथाकार पंकज मित्र की लंबी कहानी 'इवेंट मैनेजर' पर गौतम राजरिशी का एकाग्र)

''**जीवन** एक इवेंट है और जीना उसका मैनेजमेंट''...तद्भव के 31वें अंक (अप्रैल 2015) में आई पंकज मित्र की कहानी 'इवेंट मैनेजर' अपने पूरे आख्यान में जैसे एक बस इसी फ़लसफे का विस्तृत सार हो या फिर संक्षिप्त विस्तार हो ! मनोज उर्फ़ मोटका के प्रोटेगोनिज़्म के हवाले से पैर पसारते बाज़ार का टेरर और उस टेरर से प्रभावित होते जीवन नामक इवेंट का परत-दर-परत खुलना पूरी कहानी में जैसे स्पेल-बाउंड रखता है पाठकों को। मोटका की हर चीज, हर ज़रूरत को मैनेज करने की अद्भुत क्षमता का पंकज मित्र के खास सिग्नेचर स्टाइल में प्रस्तुतीकरण जहाँ तुरत कहानी की शुरुआत में ही किरदार से जोड़ देता है हम पढ़ने वालों को, वहीं ज़रा देर को थम कर हम सब अपने आस-पड़ोस या गाँव में पाए जाने ऐसे जाने कितने ही 'मोटके' को याद करने लग जाते हैं। हाँ, वही एक-दो जिनके बगैर गाँव मुहल्ले की कोई शादी, कोई पूजा, कोई भोज कभी संभल ही नहीं सकता।

एक सस्पेंस के साथ शुरू होने वाली कहानी का उत्सुक उत्सुकता के साथ पाठ प्रारम्भ होता है कि एक रात अचानक से मोटका कहीं ग़ायब हो जाता है सूत्रधार के हाथों में एक पेन ड्राइव थमा कर.... बाक़ायदा किसी फिल्मी स्टाइल में और फिर सूत्रधार की स्मृतियों के फ्लैश बैक और पेन ड्राइव में शामिल फाइल दर फाइल खुलने के साथ धीरे-धीरे बढ़ती हुई कहानी अपने क्लाइमेक्स पर जाकर एक विचित्र सी टीस छोड़ जाती है। ढेर सारे किरदारों का कहानी में जगह-जगह पर अवतरित होना कहानी के बिल्ड-अप में कोई उलझन नहीं पैदा होने देता... ये पंकज मित्र की क़िस्सागोई का कमाल है कि उन तमाम किरदारों के मध्य स्मृतियों के अनगिनत पैबंदों से वे कहानी की बुनावट में कहीं भी झोल नहीं आने देते। अपेक्षाकृत लंबी कहानी होते हुए भी, कहानी का शिल्प और कथ्य की रोचकता शुरू से आख़िर तक बाँधे रखती है। तिलोतमा के एकतरफ़ा इश्क़ में डूबे पूरे मुहल्ले के क़ाबिल लड़कों से परे अनएज्युमिंग सा मोटका बाजी मार ले जाता है, ये मैनेजमेंट कला का चरमोत्कर्ष होता है। कमाल की बात ये है कि लेखक बगैर कहीं लाउड हुए कब आपको ये बात बता जाते है, ये बाद में कहानी पढ़ लेने के बाद थोड़ी देर को मनन करने पर सिंक इन होता है।

मोटका का बगैर किसी साजो-सामान वाला टेंट हाउस अपनी वीरानी में मैनेजमेंट की सुपर थर्टी कक्षा टाइप का उदाहरण है। ख़ुद उसके ही शब्दों में ''यही तो मैनेजमेंट है ना ! अब बुड़बक लोग अपना पूँजी लगा कर बिजनेस करता है। खाली दिमाग़ लगाओ, सेटिंग करो। इधर का उधर करो और बीच में से लेके निकल जाओ''... वहीं मैनेजमेंट की दूसरी सफल कक्षा शहर के बाहुबली कैलाश यादव का त्वरित उत्थान के तौर पर दृष्टि गोचर होता है। धर्म और सत्ता के कॉकटेल को उदरस्थ करते हुए कैलाश यादव का शीर्ष पर पहुँचना और अपने सुगठित मैनेजमेंट स्किल से मोटके का एकदम से उनके इनर सर्किल में दाख़िल हो जाना क्रूर बाज़ार के बरखिलाफ़ डार्विन के 'सरवाइवल ऑव द फिटेस्ट' थ्योरी का रूपान्तरण है।

इन्हीं सब धमाचौकड़ी के बीच में तिलोतमा से मुहब्बत के रिश्ते को जोड़ने में तड़फड़ाते कैलाश यादव का अपने इकलौते सुपुत्र बिट्टू यादव पर लगाम लगाना फुसफुसाते हुए पाठकों को बता जाता है कि तिलोतमा दरअसल कैलाश यादव की ही पैदाइश है और बिट्टू तो उसका भाई हुआ। पूरी कहानी में यह कहीं भी खुल कर नहीं बताया जाता है, लेकिन लेखक ने कहानी में जिस खूबसूरती से यह रहस्य नहीं खोल कर भी एकदम से उघाड़ देते हैं वो उनकी क़िस्सागोई का चरम है।

क़िस्सान्तर में तिलोतमा का मोटके की इवेंट मैनेजमेंट कम्पनी का हिस्सा बनना और फिर उस कम्पनी को मॉर्डन टच देकर एक नई बुलंदी देना बाज़ार द्वारा डंक मारे हुए जीवन का ही एक पहलू है, जिसे पंकज मित्र की लेखनी कहानी के प्रवाह के साथ कुछ इस कदर घोल देती है कि कहानी समाप्त हो जाने के अरसे बाद तक उन आदिवासी लड़कियों का यूज़ किया जाना और उस यूज़ कीए जाने का, बगैर लाउड हुए, चित्रण पाठकों को सालता रहता है। पंकज मित्र को इस तरह की बयानगी में नैसर्गिक मास्टरी हासिल है। उनकी पहले की कहानियाँ भी चाहे वो 'पड़ताल' हो या 'बे ला का भू' हो या 'हुड़ुकलुल्लू' हो या फिर 'बैल का स्वप्न' वगैरह...पंकज मित्र बड़े ही नैचुरल तरीके से और बगैर बनावटी हुए अपने किरदारों के सापेक्ष क़िस्सागोई को बरक़रार रखते हुए जिस ख़ूबसूरती से पूरे मुद्दे को उभारते है, वो बस उनकी कहानियों को पढ़े जाने और पढ़कर गुने जाने के बाद ही समझा जा सकता है।

लंबी कहानियों में लेखक और पाठक- दोनों के साथ ही एक समस्या रहती है कि व्यर्थ का विस्तार जहाँ लेखक को अपनी लेखनी में एक कृत्रिमता लानी पड़ती है, वहीं पाठक ऊब कर पाठ्य को अधूरा छोड़ सकता है। पंकज मित्र की सहजता, उनका शिल्प और कथ्य की रवानगी इस समस्या से बड़ी चतुराई से निपट लेती है। भाषा का सौंदर्य और देसज या परिवेशानुसार किरदारों के मुख से अचानक से टपका हुआ स्थानीय भाषा में संवाद उनको अपने समकालीनों की टीम में एक अलग ही रुतबा देते हैं। 'इवेंट मैनेजर' को पढ़ना शुरू करने के पश्चात एक कोई छोटा सा वक़्फ़ा तक नहीं आता कहीं कि कहानी को बीच में ही छोड़ देने का मन करे और तभी तद्भव में प्रकाशित होते ही ये कहानी ख़ुद को दशक की चर्चित लम्बी कहानियों की फ़ेहरिस्त में शुमार करवा लेती है।

❐❐❐

द्वारा: डॉ0 रामेश्वर झा, वी.आई.पी. रोड, पूरब बाजार
सहरसा-852201 (बिहार), फोन- 9759479500
ई-मेल gautamrajrishi@gmail.com

डायरी

'कोहरा कोहरा हुआ मन – एक सर्द दिन की डायरी'

पल्लवी त्रिवेदी

कोहरे और धुंध में ढँका मेरा शहर कुछ ज़्यादा ही हसीन लगता है। जब ख़ुदा ने हर शहर की झोली भरी तो मेरे शहर के हिस्से में आईं झीलें और पहाड़ियाँ। जिस पर बादल टूट कर बरसे और हरियाली दुआ बनकर छा गई। कभी किसी इतवार इस कोहरे की खुशबू बदन में भरकर इसमें ग़ुम हो जाने का जी किया है ? कभी थरथराते बदन पूरी बाँहें खोलकर इन हवाओं को सीने से लगाने का जी किया है ?

हाँ ..आज मेरा जी चाहता है आज आँखें बंद किये इस कोहरे को पी जाने का। इस धुंध में चिपक कर बैठे ग्रीन बी ईटर्स को सहलाने का और मरून सेवंती के फूलों पर बेतरतीब बिखरी हुई ओस की बूँदों पर हौले से होंठों को रखने का।

मैं कँपकँपाती सर्दी में चल पड़ती हूँ अपनी स्कूटी उठाकर, पीठ पर पिट्ठू बैग, कैमरा और अपना टैब लेकर। ठंडी हवाओं के बीच अपने उड़ते स्कार्फ को ठीक करते हुए, मुँह से धुँआ निकालते हुए कॉफ़ी पीना बड़ा रूमानी लगता है मुझे। एक फ्लास्क में कॉफ़ी भी रखकर पिट्ठू की साइड पौकेट में खोंस ली है। मौसम की भविष्यवाणी बता रही है कि आज से शीतलहर शुरू हो गयी है।

हवाओं से सीधी टक्कर लेना ही है स्कूटी पर चार जनवरी की लगातार तीन दिन की बरसात के बाद सैर के लिए निकल देना। मगर मैं क्यों मानूँ कि ये हवाएँ मुझे सता रही है ? मुझे तो लगता है कि ये मुझे बेतहाशा चूम रही हैं। सर्द हवाओं का मिज़ाज भी बड़ा गुनगुना होता है..ग़र महसूस कर पाएँ तो। स्कूटी से मुलाक़ात महीनों बाद हुई है .. सँभल-सँभल कर चलाती हूँ। सोचती हूँ मुलाक़ातों का सिलसिला अगर टूट जाए तो एक अजनबीपन जगह बनाने लगता है संबंधों के बीच। मैं स्कूटी से नियमित मुलाक़ात का वादा करती हूँ। इस मौसम में वन विहार से अच्छी कोई जगह नहीं ..हालाँकि आज इतवार है और ये जगह भी भीड़ और शोर से भर जाती है मगर फिर भी अच्छा विकल्प है। मगर अंदर घुसते एक पल को लगता है ..आज क्यों आ गयी यहाँ ? रेलपेल मची हुई है हर जगह।

खैर, मैं अपने लिए इक एकांत कोना तलाश करती हूँ। ये काम ज़्यादा मुश्किल नहीं है। यहाँ के चप्पे-चप्पे से वाकिफ़ हूँ मैं। एक पत्थर की बेंच है कोने में जिसका चेहरा झील की तरफ है। ज़्यादातर लोग शेर, हिरन और घड़ियाल देखने के लिए आये हैं। इस बेंच से ये सब नहीं दिखाई देते। यहाँ गाड़ियों का शोर भी नहीं सुनाई देता। यहाँ हम पूरी तरह खुद के साथ हो सकते हैं। कुदरत यहाँ हमें गले लगाने को आतुर है ..कभी पंछियों की चहचहाहट की शक़्ल में, कभी ढलते हुए सूरज का अक्स झील में उतारकर तो कभी चट्टानों पर टकराती धीमी लहरों का मोहक संगीत सुनाकर।

कोहरे की खुशबू में एक नशा होता है .. मैं इस नशे को साँसों में महफूज़ कर लेना चाहती हूँ। मैंने अपने मोबाइल में गाना शुरू कर लिया है। उस्ताद शुजात ख़ान का सितार और सूफी कलाम मौसम को कॉम्प्लीमेंट करते हैं।

'मैं तो पिया से नैना मिलाय आई रे'। ये बंदिश मेरे दिल के बहुत करीब है, इसे कई बार मैंने रिपीट मोड में लगाकर घंटों-घंटों सुना है। सामने झील में कुछ टील्स पंखों में गर्दन छुपाए बैठी हैं। मैं कैमरा थामे इंतज़ार करती हूँ कि शायद ये मुँह उठाकर देखें और मुझे एक अच्छी क्लिक मिल जाए। मगर सारी की सारी सर्दी से बचाव कर रही हैं। बीच-बीच में कोई टील अचानक पंखों को फड़फड़ाती है और पानी की बूँदें उसके चारों ओर बिखर जाती हैं। अगर कैमरे की शटर स्पीड बढ़ा दी जाए तो इन बूंदों को फ्रीज़ किया जा सकता है मगर हमारी आँखों के लेंस में यह खूबी नहीं है। हाँ दिल में ज़रूर ये खूबी है कि बरसों पुराने किसी पल को वैसा का वैसा स्मृति में फ्रीज़ कर ले। अचानक एक टिटहरी की टिट-टिट की चीख से आसमान गूँज उठा है ... सारे पक्षी सतर्क हो गए हैं। टील्स ने भी पंखों से मुँह निकालकर बाहर देखा है। फ़िज़ाँ में बेचैनी घुल गयी है। टिटहरी जंगल की मुखबिर है। खतरे की सूचना यही सबको देती है। शायद उसने मार्श हैरियर को झील के ऊपर उड़ते देखा है। हैरियर आगे निकल गया है और टील्स ने वापस मुँह पंखों के भीतर घुसा लिया है। सायबेरिया से आये मेहमान इस सर्दी में कम हैं। हम दिनों दिन इनका आशियाना छीनते जा रहे हैं। इंसानी घुसपैठ अब इन बेज़ुबानों के घरों तक होने लगी है।

कैमरा मैंने परे खिसका दिया है ... आज लेंस से नहीं आँखों में इस खूबसूरती को कैद करने का मन है। एक सारस का जोड़ा बहुत दूर दिखाई देता है। इन्हें देखो तो दिल से दुआएँ निकलती हैं .. ईश्वर ने इन्हें जोड़ों में ही भेजा है। मैंने कभी कोई सारस अकेला

नहीं देखा। चलना, उड़ना, रुकना,नाचना सब एक साथ। कभी सोचती हूँ रोमियो-जूलियट, लैला-मजनूँ और हीर-रांझा भी कभी सारस रहे होंगे। ये सोचकर ही दिल बैठ जाता है कि जब इनमें से कोई एक मर जाता होगा तो दूसरा कैसे जीता होगा।

तभी किसी के क़दमों की आहट से मेरा ध्यान टूटा है ... एक प्रेमी जोड़ा आकर साथ की चट्टान पर बैठा है। मैं सारसों के साथ इनके लिए भी दुआ पढ़ती हूँ। लड़की के चेहरे पर एक नूर है .. मैं वाक़िफ हूँ इस नूर से। इश्क के नूर से। लड़का सारी दुनिया उसके क़दमों में बिछा देना चाहता है। दोनों गहरे प्रेम में दिखाई देते हैं। दोनों हाथों में हाथ लिए बैठे हैं। लड़के ने मोबाइल निकालकर बाजू में रखा है और गाना बजा लिया है धीमी आवाज़ में। अरिजीत सिंह गा रहे हैं 'आज फिर तुम पे प्यार आया है'। अठारह की उम्र का मासूम और सच्चा प्रेम। क्या जाने ..कुछ बरस बाद ये कहाँ होंगे ? एक साथ होंगे या नहीं ? मगर इस कोहरे भरे दिन में आज झील के किनारे जो कसमें खायी होंगी, उन्हें कभी न भूल पाएँगे।

एक बरसों पुरानी सर्दी की शाम अचानक मेरे ज़ेहन से निकलकर दस्तक देती है। ऐसा ही झील का किनारा था, लड़की का चेहरा नूर से दमक रहा था, क़समों के दो तावीज़ थे और अरिजीत की जगह जगजीत सिंह थे 'हर गोशाँ गुलिस्ताँ था, कल रात जहाँ मैं था'।

'ऐ ख़ुदा ..मुझे अगले जनम में सारस बनाना'

सोचते-सोचते मैं महसूस करती हूँ कि टाइप करते हुए मेरी उँगलियाँ सर्द हो चली है, होंठ भी बर्फ हो रहे हैं। कॉफ़ी निकालती हूँ। मैंने दो लोगों के लिए कॉफ़ी रखी थी और दो डिस्पोज़ेबल ग्लास। जानती थी.... कोई अजनबी ज़रूर मिलेगा जिसका नाम इस कॉफ़ी और ग्लास पर लिखा है क़िस्मत ने। मैं उन दोनों को कॉफ़ी का ऑफर देती हूँ। थोड़ी झिझक के बाद वे मान गए हैं। मगर ऊप्स ...ग्लास केवल दो हैं और पीने वाले तीन। मैं संकोच में भरकर ये बात उन्हें बताती हूँ। लड़की थोड़ा सकुचाकर एक मुस्कुराहट के साथ कहती है 'हम दोनों एक ही से पी लेंगे'। मुझे अपनी मूर्खता पर हँसी आती है। प्रेम में डूबे दो लोग दो नहीं एक

होते हैं तो दो कपों का भला क्या काम ? हम तीनों मुस्कुराए हैं। दस मिनिट तक हम सर्दी, कोहरे और नए साल की बातें करते हैं। कॉफ़ी पीकर दोनों बाय बोलकर अपनी चट्टान पर वापस बैठ गए हैं।

धुंध रूमानी तिलिस्म रचने के साथ ही एक रहस्य पैदा करती है। कभी एक अनजाना भय अनहोनी होने का, कभी जीवन की नश्वरता का और कभी गहरी उदासी अपनी हथेलियों में लेकर मल देती है चेहरे पर तो कभी अगले ही पल दिल में रूमानियत घुलने लगती है बिल्कुल ऐसे जैसे मानों गर्म पानी में टी बैग सरका दिया हो किसी ने।

दूर एक नौका मंथर गति से बह रही है। कोहरे के कारण मछुआरा साफ़ नज़र नहीं आता। सिर्फ एक धुंधली आउट लाइन दिखाई देती है। धुंध सारे रंग सोख लेती है। सारे रंग बिरंगे पंछी सलेटी नज़र आते हैं। जैसे किसी पेंटर ने आसमान के कैनवास पर ब्लैक एंड व्हाइट तस्वीरें बना रखी हों। सूरज पूरी तरह बुझा हुआ है ... सुबह चार बजे के चूल्हे की तरह जिसमें एक चिंगारी भी शेष नहीं है। सिर्फ राख है, गहरे गाढ़े रंग की राख।

शाम के पाँच बजने को हैं ..हवा तीखी हो चली है। ठंडी सुइयों के जैसी। मैं खुद कोहरे में तब्दील होती जाती हूँ। मेरी नाक मुँह से निकलता कोहरा, बदन पर जमता कोहरा, साँसों में घुलता और नसों में बहता कोहरा। कोहरा बन जाने के लिए ही तो आई थी मैं यहाँ। कभी मुझे धनोल्टी की धुंध भरी सुबह याद आती है तो कभी ग्वालियर की सिटी सेंटर की कोहरे में लिपटी रातें जिनमें लैम्प पोस्ट एक बुझते दिये से ज़्यादा नज़र नहीं आते। खुद के साथ जब वक़्त बिताने बैठो तो सारी उम्र के सुख दु:ख आ आकर हाज़िरी लगाते हैं। कभी कभी अपनी ही डोर से आज़ाद हो जाने को जी चाहता है ... एक मौजी लहर की तरह। मन को एक फूँक मारकर देह से ऊपर उड़ा दिया है मैंने। देह केवल साँस लेती है। मन ही तो है जो ज़िंदा रखता है। मन ही तो है जो प्रेम को रागों में बदलकर जीवन को संगीत बना देता है। मन आसमान में नाचता है, चहकता है, गुनगुनाता है। वो जो बुलबुल उस शाख पर गाती है, वो मेरा मन है। वो ताकतवर चील जो आसमान में गोते लगाती है वो मेरा मन ही तो है, पीले नाजुक फूलों पर उड़ती शोख़ रंगों से भरी तितली, दूर अपने छौने को दूध पिलाती चकित नेत्रों से देखती वो हिरनी और वो जो दो साल का बच्चा अपने डैड के आगे-आगे खिलखिलाता हुआ दौड़ रहा है, मेरा मन नहीं तो और क्या ? मेरा मन हर उस जगह मौजूद है जहाँ ज़िन्दगी बह रही है। मैं इस पल में हर जगह हूँ, हर शै में हूँ, कुदरत से एकाकार होने को जीते हुए।

वन विहार का चौकीदार आकर हिदायत दे रहा है 'साढ़े पाँच बजे तक बाहर हो जाइयेगा' मैं आज्ञाकारी बच्चे की तरह सर हिलाती हूँ। कोहरे के नशे में ज़िन्दगी का नशा आकर मिल गया है। इस दोगुने नशे में दिमाग दुनियादारी से परे सरक गया है और मैं अपने दिल की आवाज़ बहुत अच्छे से सुन सकती हूँ। अभी-अभी दिल ने मुझे चूमकर मुझसे कहा है ... 'शुक्रिया'। मैं भी उसे चूमती हूँ और स्कूटी उठाकर वापस घर को निकल पड़ती हूँ।

शुजात ख़ान अभी भी गा रहे हैं 'पुरनूरे बशर कहिये या नूरे ख़ुदा कहिये, अल्फ़ाज़ नहीं मिलते, सरकार को क्या कहिये'

❑❑❑

एफ़ 6/17, चार इमली, भोपाल
मप्र, 462001
trivedipallavi2k@gmail.com

मेरा सच

राजश्री मिश्रा

बिस्तर पर पड़े-पड़े .... मैं पड़ोस के घर से आती टी. वी. की आवाज़, बाहर की हलचल, घर में लोगों की आवाजाही, कमरे के अन्दर आने वालों के क़दमों की आहट,उनकी बातचीत, सब सुन सकता था, सब महसूस कर सकता था। मैं संज्ञाहीन होकर भी पूरी तरह से संज्ञा शून्य नहीं हो पाया था। मैं साफ़ देख पा रहा था उस डॉक्टर को, उसके साथ आयी नर्स और वार्ड बॉय को, पुलिस वालों को और उन सभी को जो मेरे दोनों बच्चों को घेरकर खड़े थे उन्हें भी देख सकता था जो बाहर से कमरे के अन्दर झाँक कर जायज़ा लेने की कोशिश कर रहे थे। मैं सुन सकता था जूतों की ठक-ठक की आवाज़, कमरे में खड़े लोगों की उच्छ्वास और वो सारी बातें जो वो लोग बच्चों के इलाज के बारे में कर रहे थे मुझे सुनाई दे रही थी। उन्होंने बच्चों को स्ट्रेचर पर सँभालकर रखा और कमरे से बाहर ले गए। ये सब मुझे करना चाहिए था पर मैं आज मूकदर्शक बने सब देख रहा हूँ। न बच्चों के सर पर प्यार से हाथ फिरा सकता हूँ, न ही दिलासा देने दो शब्द बोल सकता हूँ, ध्यान से, ..सँभाल कर... ऐसा उन्हें ले जाने वालों को कह भी नहीं सकता, बस, देख सकता हूँ, सुन सकता हूँ।

वो उन्हें कैसे ले जा रहे हैं ये देखने के लिए मैंने खिड़की से बाहर झाँक कर देखने की कोशिश की, खिड़की के बाहर बसंत ऋतु में भी बसंत के कोई चिह्न नहीं दिखाई दे रहे हैं, न उल्लास, न उन्माद, बस एक अवसाद पसरा हुआ है। एकदम ग्रीष्म ऋतु में जेठ की दोपहरी जैसी ख़ामोशी, उदासी और बैचेनी है माहौल में ... पुलिस वैन और एम्बुलेंस के सायरन का चीत्कार इस सन्नाटे की भयावहता को और बढ़ा रहा है ..सुबह में भी रात सी नीरवता है। बाहर घर के आँगन में, सड़क पर कई जाने-अनजाने चेहरे नज़र आ रहे हैं। वो सभी चेहरे भी अवसाद में लिपटे हैं पर अगर आँखों में देखा जाए तो भाव अलग-अलग हैं। चेहरे के भाव तो हम जैसा दिखाना चाहते हैं वैसे हो जाते है पर वास्तविक मनोदशा आँखों से झलकती है। लोग किसी को समझने के लिए उसका चेहरा पढ़ने की कोशिश करते है, पर मैं हमेशा से आँखों में झाँक कर देखता हूँ। कितना भी ख़ामोश आदमी हो उसकी आँखें ज़रूर बात करती है, कोई कितना भी झूठा आदमी हो उसकी आँखें हमेशा सच बोलती है। आज भी इन सच्चे -झूठे दु:ख में लिपटे चेहरों की आँखों में मुझे दु:ख कम, आश्चर्य, गुस्सा और सहानुभूति के साथ सवाल ज्यादा नज़र आ रहे हैं और सड़क के उस पार खड़े लोगों की आँखों में सिर्फ और सिर्फ उत्सुकता है। लोग आपस में बातें कर रहे हैं उनके हावभाव जो भी हों पर मैं जानता हूँ वो मेरे ही बारे में बातें कर रहे है। मुझे पता है उनकी सारी बातों का लब्बोलुबाब मेरा सही या गलत होना है। सब अपने-अपने तरीके से मुझे सही या ग़लत ठहराने की कोशिश कर रहे है। ये लोग कैसे मेरे बारे में कोई निर्णय कर सकते हैं ? ये लोग तो मुझे ठीक से जानते भी नहीं हैं। क्या इनमें इतना विवेक है कि ये सारी परिस्तिथियों की सही-सही व्याख्या कर सकें. वैसे भी किसी मसले पर क्या सही है? या क्या ग़लत? इसका कोई एक अंतिम उत्तर कैसे हो सकता है ? सत्य का कोई एक स्वरूप कहाँ होता है ? हर व्यक्ति का सत्य अलग होता है उसकी व्याख्या अलग होती है ? और यदि वास्तविकता अप्रत्यक्ष और रहस्यमयी हो तो सत्य अव्यक्त रह जाता है... ये पूरा रहस्य और इस घटनाक्रम की वास्तविकता का ज्ञान केवल मुझे है इसलिए क्या सही है और क्या ग़लत ये निर्णय भी मेरा ही होना चाहिए। सोचते हुए मैंने एक नज़र कमरे पर डाली वो हृदयविदारक दृश्य, जिसका निर्मम चितेरा मैं स्वयं हूँ देखकर एकबारगी मैं खुद ही दहल गया। डर कर मैंने बाहर खड़े लोगों की भीड़ में बाबू और भैया को तलाशने की कोशिश की पर वो कहीं दिखे नहीं शायद अब तक पहुँचे नहीं हैं वर्ना क्या वो अब तक बाहर रुक पाते? उनके आने तक मेरे पास समय है सारे अप्रत्यक्ष, सारे रहस्य को व्यक्त कर वास्तविकता से साक्षात्कार का, ऐसा सोचते हुए मैं पूरे घटनाक्रम को फिर से घटते हुए देख पा रहा था। मैं बिलकुल नहीं चाहता था उस सब से मेरा फिर समाना हो, वो सब मुझे फिर से जीना पड़े लेकिन वास्तविकता को समझने के लिए अब निर्विकार, निराकार, निर्गुण स्वरूप में शांतचित्त से गहराई में उतरना ज़रूरी था। आख़िर सही ग़लत की व्याख्या जो करनी थी क्योंकि अब तक जो घटित हुआ है वो उद्विग्नता का परिणाम है, इसमें कार्य-कारण संबंध स्पष्ट नहीं है।

उस दिन भी मैं हमेशा की तरह अपने शाम के शहर भ्रमण पर था। अपनी ट्रेनिंग के दौरान सिखाई गयी अच्छी पुलिसिंग की कुछ टिप्स में से इस एक पर मैं हमेशा अमल करता आया हूँ ... ''शाम का शहर भ्रमण'' दिन और रात के बीच का समय अपने आप में अनोखा समय होता है न पूरी तरह से दिन की हलचल ख़त्म हुयी होती है न पूरी तरह से रात की नीरवता तटस्थ हुई होती है। बकौल गुलज़ार, शाम वक्त का वो हिस्सा, जिसे न दिन अपनाता है, न रात अपने साथ लेकर जाती है। ये थोड़ा अवसाद का समय होता है इस समय में ही थकान शामिल है, सब कुछ समेट लेने का भाव, वापसी

का ख़याल। सुबह सारे लोगों की मानसिकता लगभग एक सी होती है, काम पर जाना, अपने तयशुदा काम निपटाने के लिए उत्साह से भरपूर, आगाज़ का समय, इसलिए सुबह में हमेशा सकारात्मकता होती है; लेकिन शाम के समय सबकी मानसिकता अलग अलग हो जाती है। शाम को लौटने वालों में कई तरह के लोग होते हैं, खुश और कामयाब लोगों के साथ-साथ थके, निराश, हारे, नाकामयाब लोग भी। सबके अगले दिन की योजनाएँ अलग हो सकती हैं पर उसके लिए उत्साह जुटाने का ज़्यादातर लोगों का तरीका एक सा होता है 'नशा', कोई कामयाबी का जश्न मनाने इसे अपनाता है, तो कोई नाकामयाबी का दर्द भुलाने। इस समय में लोग आपस में उलझते ज़्यादा हैं क्योंकि सड़क पर सभी को जल्दी रहती है, हर कोई सुकून के पल की चाह में जल्द से जल्द अपने आशियाने में पहुँचना चाहता है। वापसी में थोड़ा भी विलम्ब खीज पैदा करता है, तो लड़ाई-झगड़े एक्सीडेंट की सम्भावना भी ज़्यादा रहती है। असामाजिक, गुंडा, बदमाशों के लिए ये समय दिनभर की शेखी बघारने और जश्न मनाने चौक-चौराहों पर अड्डे जमाने का होता है इसलिए एक अच्छे पुलिस ऑफिसर को शाम को शहर भ्रमण ज़रूर करना चाहिए। अगर अधिकारी काम पर हो तो मातहत भी कोताही नहीं करते। पुलिस व्यवस्था चाक चौबंद हो तो अपराध और अपराधी खुद ही नियंत्रित हो जाते हैं। बस इसीलिए शाम का शहर भ्रमण मेरा तय कार्यक्रम रहता।

उस दिन भ्रमण पर ही था, जब बाज़ार में ट्रैफिक जाम का पॉइंट मिला था। कण्ट्रोल रूम से दो से तीन बार पॉइंट चल गया था पर किसी ट्रैफिक दस्ते या थाने के दस्ते ने मौके पर रवाना होने की तस्दीक नहीं की थी, सो मैंने अपने ड्राइवर को बाज़ार की ओर ले चलने का निर्देश दिया। वहाँ एक सँकरी रोड में एक कार खड़ी थी ट्रैफिक दोनों तरफ से रुका हुआ था। कार का चालक कार में ही बैठा था पर वह सड़क से हटने की कोई कोशिश नहीं कर रहा था। लोग उस पर चिल्ला रहे थे पर वो बेअसर था। दूर से समझ नहीं आ रहा था कि कार ख़राब हो गयी है या कोई और वज़ह है। मैं गनमैन और एक सिपाही ले कर कार के पास पहुँचा।

मैंने देखा कार का ड्राइवर स्टेयरिंग पर सर टिकाए हुए बैठा था। मैंने उसे हिलाते हुए कार हटाने के लिए कहा। ड्राइवर ने अपनी सुर्ख़ लाल नशे में धुत्त आँखों से मेरी तरफ देखा और लड़खड़ाती ज़बान से क्या कहा मेरी समझ में कुछ नहीं आया। रहन-सहन पहनावे से वह कार का मालिक लग रहा था। मैंने उसे कई बार संयत शब्दों में कार हटाने कहा पर उसे होश कहाँ था? जो वो मेरी बात सुनता-समझता। मेरी समझ में आ गया था कि वह कुछ नहीं कर पायेगा

सड़क का जाम लगातार बढ़ता जा रहा था दोपहिया, चारपहिया गाड़ियों की कतार लम्बी होती जा रही थी। वहाँ स्थिति इतनी ख़राब थी कि लोग पैदल भी वहाँ से नहीं निकल सकते थे। जाम में फँसे लोगों का धैर्य जवाब देने लगा था, पुलिस वालों के पहुँचने के बावजूद राहत की कोई उम्मीद नज़र नहीं आने से जो नाराज़गी अब तक कार के ड्राइवर के लिए थी वो अब पुलिस वालों के प्रति ग़ुस्से की शक्ल अख़्तियार कर चुकी थी। चारों तरफ से दबाव बढ़ता जा रहा था, स्थिति कभी भी विस्फोटक हो सकती थी। उस समय सारी परिस्थिति से निपटने का जो सबसे सही तरीका मुझे सूझा वह था कि किसी तरह से कार के ड्राइवर को ड्राइविंग सीट से हटा कर, उसकी कार को किसी अन्य से ड्राइव कराकर, वहाँ से हटाया जाए ताकि ट्रैफिक जाम से लोगों को राहत मिले। छोटा शहर था इसलिए ट्रैफिक डाइवर्ट कर स्थिति पर नियंत्रण पाने की गुंजाइश नहीं के बराबर थी और जो लोग यहाँ फँस गए हैं, उन्हें तुरंत राहत पहुँचाना मेरी प्राथमिकता थी।

मैंने अपनी योजना अनुसार कार के चालक को ड्राइविंग सीट से उतारने का प्रयास किया लेकिन उसने नशे में क्या समझा पता नहीं ? मैं और मेरा स्टाफ उसे कार से उतारने का जितना प्रयास करते वह उतना अधिक प्रतिरोध करता। उसने जाने अपने साथ क्या होने की कल्पना कर ली थी और उस अप्रत्याशित से निपटने के लिए लगभग बेहोश होने के बावजूद वह इतनी शक्ति जुटा पा रहा था कि हम तीन पुलिस वाले मिलकर भी उसे कार से नहीं उतार पा रहे थे। हमारी नाकामयाबी जनता जनार्दन के लिए मनोरंजक तमाशा बन गई थी। अपने जाम में फँसे होने की परेशानी भूल लोग अब पुलिस पर हँसने और फिकरे कसने में व्यस्त हो गए थे।

मुझे शर्मिंदगी और खीज के साथ-साथ अब ग़ुस्सा भी आने लगा था। मैंने अपनी पूरी ताक़त से उसे बाहर खींचने की कोशिश की और दूसरी ओर से मेरे स्टाफ ने उसे कार से बाहर धक्का दिया, परिणाम आशा के अनुरूप रहा। सारी मुसीबत की जड़ अब सड़क पर पड़ी थी। खींचतान में उसके कपड़े अस्तव्यस्त हो गए थे, एक दो जगह से सिलाई टूट गयी थी, वह सड़क पर गिरकर धूल में सन गया था। मैंने किसी से उसकी कार सड़क से हटाने कहा, किससे कहा अभी याद नहीं आ रहा है पर ये ठीक तरह से याद है कि तब तक थाने का दस्ता और ट्रैफिक दस्ता पहुँच चुके थे।

मेरे उस कार चालक को थाने पहुँचाने की बात कहते ही एक इंस्पेक्टर ने मेरे कान में कुछ कहा; और जो कहा वो सुन मेरा गुस्सा, मेरी खीज, क्षण भर में दया, करुणा, सहानुभूति में बदल गए। भावनाएँ कितनी लचीली होती हैं, ये मुझे उस क्षण महसूस हुआ। साथ ही उस आदमी से मुझे एक रिश्ता महसूस होने लगा। अभी कुछ क्षण पहले जो मुझे सारी मुसीबत की जड़ लग रहा था, किसी सुपर हीरो वाली हॉलीवुड फिल्म की तरह, जिससे मैं सारे शहर को मुक्त करा अमन शांति कायम करना चाहता था। जिसे थाने ले जाकर मैं जिसकी अच्छी पुलिसिया ख़ातिरदारी करने का मन बना रहा था, अचानक ही मुझे वह मेरा अपना सा लगने लगा था। मैं अपने मन और चेहरे पर ठीक वैसे ही भाव महसूस कर रहा था जैसे मैंने अपने गाँव में पड़ोस के रज्जू भैया की भाभी और बच्चों के चेहरे पर देखे थे, जब रात को रज्जू भैय्या शराब पी कर नशे में झूमते घर आते। भाभी और बच्चे उन्हें जल्दी से घर के अन्दर कर चेहरे पर सब एकदम ठीक है वाला भाव लिए, एक जबरिया मुस्कान चिपकाए, सबके सामने आते पर आँखों में असहनीय शर्मिंदगी तैरती रहती।

नशा करने वाला ये कभी नहीं समझ सकता कि उसकी बेहोशी को होश वाले कैसे बर्दाश्त करते हैं। इंसान नशे में अपना मान-सम्मान, पद -प्रतिष्ठा सब भूल जाता है। इतने ज़िम्मेदार पद पर होते हुए ऐसी लापरवाही कैसे की जा सकती है? क्या इन्हें ज्ञान नहीं कि इनकी छवि अब इनकी व्यक्तिगत छवि नहीं है, एक विभाग, एक पद की छवि है। थोड़े से आनंद के लिए

इन्होंने कितना कुछ दाँव पर लगा दिया।

उनसे मेरा करीबी रिश्ता यूँ निकल आया कि वह क़ानून के संरक्षक हैं और मैं कानून का रखवाला। मैं शहर में नया हूँ इसलिए मैं उन्हें नहीं जानता पर शहर छोटा है ये तमाशबीन ज़रूर जानते होंगे कि ये न्यायाधीश महोदय हैं। अगर पहचान गए तो कितनी बातें बनाएँगे ? और ये मीडिया, ये तो बस सूँघता ही रहता है, जैसे कितने ही ख़यालात तेज़ी से मेरे मन मस्तिष्क में हलचल मचाने लगे। इससे पहले कि कोई उन्हें पहचान पाए, उन्हें तत्काल वहाँ से निकालकर उनके घर पहुँचाना ज़रूरी था, सो मैंने उन्हें घर तक ससम्मान छोड़ने की ज़िम्मेदारी खुद लेते हुए ट्रैफिक की ज़िम्मेदारी मातहतों को सौंप दी। उन्हें अपनी सरकारी गाड़ी से उनके घर छोड़कर मैं निश्चिन्त मन से अपने घर चला आया।

मेरे घर को मैं मज़ाक में ''निर्मल आनंद केंद्र'' कहता, वो इसलिए, दरअसल उस घर में चार बच्चे रहते थे। दो बच्चे तो सही मायने में बच्चे थे। तीसरी थी सुहासिनी मेरी पत्नी, अपने नाम को चरितार्थ करती मोहक हँसी वाली। उसकी हँसी बिल्कुल बच्चों जैसी थी। सुहास को दुनिया से कोई मतलब नहीं। जब वह अपनी आँखें फैलाकर बातें करती, तो उसकी मासूम शक्ल पर कसकर एक बोसा जड़ देने से ज़्यादा और कुछ मुझे कभी नहीं सुझा। पूरी बावली थी सुहास। मुझे अच्छे से याद है, जब मैंने उसे बाँहों में लेकर ख़ुशी से दोहरा होते हुए बताया कि मुझे 'गैलेंट्री अवार्ड' मिला है, तो खुश होने या बधाई देने के बजाय उस पागल ने अपनी आँख फैलाते हुए कहा था 'पर तुम तो ज़िन्दा हो और तुम तो किसी वॉर में भी नहीं गए फिर ये कैसे ?' हँसते हुए मैंने उससे कहा 'बुद्धू! वॉर में नहीं गया, ज़िन्दा हूँ, जो एनकाउंटर किया था, उसके लिए मिला है, और हाँ गैलेंट्री के लिए मरना ज़रूरी शर्त नहीं है' कहते हुए उसका माथा चूम लिया। लेकिन मैं मन ही मन सहम गया था उसकी बेपरवाही देखकर, अगर कभी इसे अकेले मेरे बगैर रहना पड़ा, तो ये कैसे कर पाएगी?

सब कुछ सोचते हुए मेरे माथे की नसें तन गयीं थीं। उसे अगर कुछ पता था तो मेरी किस शर्ट में बटन नहीं है, मैं कितनी मिर्च खाता हूँ ?, बच्चों के एग्ज़ाम कब हैं ? कौन सा व्रत रखने से क्या होता, जैसी बातें। कभी मैं खीज कर उसे इस सब के अलावा कुछ सिखने-करने कहता, तो उसका टका सा जवाब होता 'आप हैं ना!! मुझे क्या करना है'। जाने किस स्कूल में पढ़ी थी 'महत्त्वकांक्षा' शब्द तो वह जानती ही नहीं थी। अगर कोई शब्द उसे समझ आता तो वो था 'परिवार'। शादी को उसने सात जन्मों के लिए 'हर्नेस' की तरह समझ लिया था और निश्चिन्त रहती, खुश रहती, मेरे भरोसे। लेकिन उसका मेरे प्रति ये विश्वास मुझे डरा देता था। इन तीन सहज, सरल और निश्छल बच्चों के साथ मैं कैसे बड़ा बन कर रह पाता।

जब इन तीनों का साथ होता तो मेरा बचपन भी लौट आता। मेरी वर्दी वाली नौकरी मुझसे ज़्यादा सुहास की शान थी उसे इस बात पर बड़ा गर्व था कि उसका पति पुलिस ऑफिसर है। बावली ये सोचकर ही इठलाती रहती थी।

अगली सुबह पर कल रात का साफ असर था। सारे स्थानीय समाचार पत्र कल की घटना से रँगे थे। समाचार पढ़ते समय मैंने महसूस किया कि कल शायद मुझे जज साहब का मेडिकल करवा लेना था और खुद जाने के बजाय, किसी मातहत को भेजना था उन्हें घर छोड़ने। मैंने फिर खुद ही अपने आप को समझाया; नहीं, उस परिस्थिति में मैंने जो निर्णय लिया वही सही था। उस समय यही किया जा सकता था। मुझे लगा था वैसे भी पुलिस वालों के लिए ये सब सामान्य है। ट्रैफिक जाम खुलवाना रोज़मर्रे का काम है लेकिन जज साहब के लिए असामान्य हुआ था। उन्हें सुबह अपनी स्थिति देखकर कल रात का जो भी आधा-अधूरा याद आया, उन्होंने उसे कवर करने के प्रयास में कोई कसर बाकी नहीं रखी। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया चैनल लगातार ख़बर चला रहे थे, घटना का वीडियो प्रसारित कर रहे थे। दोपहर तक शहर में मेरे विरुद्ध माहौल तैयार हो गया। वकील संघ, कुछ युवा नेता और भी जाने कौन- कौन से संघ, महासंघ, मेरे निलंबन, स्थानान्तारण की माँग करते हुए जुलूस, धरना-प्रदर्शन करने लगे। एक राजनीतिक दल के लोग तो आमरण अनशन पर ही बैठ गए।

मैं दोबारा सोचने पर मजबूर हो गया, क्या सही में कल रात मुझसे ग़लती हो गयी थी? क्या मुझे मेडिकल करवा लेना था ? लेकिन फिर भी मुझे यकीन था कि मेरी ईमानदार, कर्मठ, कर्तव्यनिष्ठ, छवि के आगे ये सब ज़्यादा देर नहीं टिकेगा। मैंने सोचा कि मैं ग़लत नहीं था, सारे शहर ने पूरी घटना अपनी आँखों से देखी है, मेरे मातहत मेरे साथ थे, उन्हें सारा वाकया पता है, सब ठीक हो जायेगा। पर मुझे कहाँ पता था कि मेरी मेहनत, मेरी सच्चाई, मेरी छवि, जिस पर मैं इतना भरोसा कर रहा हूँ, वो सब इस बाज़ार में खोटे सिक्के की तरह है, उसका कोई मोल नहीं है। ये शहर जिसे तकलीफ में देख कर मैं परेशान हो गया था। इसने मुझे अब तक नहीं अपनाया है, वो लोग जिन्हें राहत पहुँचाने मैं जूझ रहा था उन्हें मुझसे कोई वास्ता नहीं। और वो जज महोदय जिनके सम्मान की रक्षा की ख़ातिर मैंने वैधानिक कानूनी प्रक्रिया का उल्लंघन किया, वो मेरे सम्मान की राख से अपने सम्मान की खोयी चमक वापस लाना चाहते हैं।

शाम को ऑफिस बंद होने से पहले रीडर ने एक फैक्स मेरे हाथ में थमा दिया। वो मेरा निलंबन आदेश था। मैं हमेशा प्रशंसा, ईनाम पाने वाला, वीरता पुरस्कार विजेता, जिसका कभी कोई स्पष्टीकरण भी नहीं हुआ हो, उसके हाथ में सीधे निलंबन आदेश। मैं कुर्सी पर जैसे जम गया मेरी संवेदनाएँ शून्य हो गईं, अगर मैं कुछ सुन पा रहा था, तो वो थी रेलगाड़ी की आवाज़ से भी तेज़ मेरी धड़कन की आवाज़, अगर कुछ महसूस कर सकता था तो वो थी गले और कान के लवों की तपिश, सूखे होंठ, पेशानी पर नमी। मेरी सारी शक्ति मेरे शरीर से जैसे भाप बनकर निकल रही थी और मेरी खाल जैसी मेरी वर्दी पसीने से पूरी तरह भीग गई थी। मैं कुछ भी सोचने-समझने की स्थिति में नहीं था।

अभी से एक मिनट पहले तक जो जगह मेरी अपनी थी, मेरा अपना ऑफिस, वो कोई अपरिचित जगह लगने लगी। मेरा कंठ सूख रहा था लेकिन मुझमें इतना साहस नहीं रह गया था कि मैं घंटी बजा कर हाज़री को बुला लूँ, उससे एक ग्लास पानी लाने के लिए कहूँ। मुझे वो अपना मातहत नहीं जान पड़ रहा था। न मैंने किसी को बुलाया, न ही कोई मेरे पास आया। ऐसा संयोग से हुआ, या मेरे निलंबन की ख़बर सुन मातहतों ने मुझसे दूरी बना ली थी, पता नहीं, पर उस वक्त मुझे दूसरी संभावना ही ज़्यादा प्रबल लग रही थी।

हर थोड़ी देर में सीनियर्स के कॉल से

समय बे-समय बज उठने वाले मेरे मोबाइल ने भी चुप्पी साध ली थी। ''आओ ज़रा इस मसले पर चर्चा करना है'', ''ज़रा वो काम निपटा कर इस केस पर ध्यान देना....'', ''थोड़ी देर में मिलो कुछ डिस्कस करना है...'' कह कर मुझसे सारी समस्याओं पर बात करने और मेरी राय को तवज्जो देने वाले, मेरे सीनियर्स में से किसी ने भी मुझसे इस मसले पर कोई चर्चा नहीं की। जिस बात पर इतना बवाल हो रहा था, उसकी वास्तविकता क्या है ये तक मुझसे जानने की ज़रूरत नहीं समझी। मेरी नज़र में वे सब सुलझे हुए, समझदार, संवेदनशील लोग थे, फिर ऐसा क्या हो गया था कि वे अपना सहज व्यवहार नहीं कर पा रहे थे। कोई तो ऐसी शक्ति थी जिसके प्रभाव में उन सभी ने दम साध रखा था। कोई तो मुझे बुला कर मुझसे बात करता, मेरी बात सुनता, भले मुझे ही गलत ठहराता पर मुझसे बात तो करता। मुझे लगा सब मुझसे कतरा रहे हैं। सारा दिन सर ! सर ! कह कर मेरे आगे पीछे घूमने वाले अब मुझसे कन्नी काट रहे हैं। हो सकता है ये सब मेरे मन का भ्रम रहा हो, पर उस समय मुझे ऐसा ही महसूस हो रहा था। मुझे सख्त ज़रूरत थी कि कोई मुझसे बात करे, मुझे कुछ बताए, मुझे कुछ समझाए, पर कोई नहीं था।

मुझसे किसी ने बात नहीं की सबकी आँखों में मेरे लिए बेगानापन झलक रहा था। इससे जो अपमान मैं महसूस कर रहा था उसका दंश मुझे और अधिक परेशान करने लगा। हो सकता है उन सब के पास मुझसे कहने के लिए कुछ ना रहा हो। ये भी हो सकता है उन्होंने सोचा हो कि मुझे मेरे हाल पर थोड़ी देर अकेला छोड़ दिया जाए, कुछ समय बाद बात कर लेंगे। पर उनमें से किसी को तो मुझसे बात करना चाहिए था। किसी को बस कह देना था मुझसे कि सब ठीक हो जायेगा। एकबारगी मेरा मन किया किसी बैचमेट से बात करनी चाहिए, लेकिन इस विभाग में पोस्टिंग्स के खेल में हम सब अनचाहे ही कब एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी बन जाते हैं पता ही नहीं चलता है। कैसे अपने किसी प्रतिद्वंदी के आगे मैं अपनी कमज़ोरी अपनी कमी की बात करूँ? कहीं उन्होंने मेरा उपहास किया तो? जाने क्यों मुझे कोई भी सकारात्मक बात सूझ ही नहीं रही थी।

मेरा दफ्तर मुझे काट खाने दौड़ रहा था। वहाँ की बचैनी से भाग कर मैं घर पहुँचा। घर में मातम छाया हुआ था। सुहास रो रही थी। उसे जाने कैसे ख़बर मिल गयी थी। उसे रोते देख दोनों बच्चे भी रो रहे थे। मुझे देख सुहास और बच्चे और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे। उन्हें रोते देख मुझे भी रोना आ गया। मुझे लगा मेरे कारण ये सब दु:खी हैं। मैं इनको खुश नहीं रख पाया। मैं अपनी ज़िम्मेदारी सही ढंग से नहीं निभा पाया। मेरी ग़लती से मेरे परिवार को ये दिन देखना पड़ रहा है। ये लोग अब उन लोगों का सामना कैसे करेंगे, जिनके सामने ये शान से खड़े रहते थे। मेरे कारण इन्हें शर्मिंदा होना पड़ेगा। सुहास तो बार-बार बस! अब क्या होगा ? कहती और मुझसे लिपट कर रोने लगती।

मैं बहुत असहाय महसूस कर रहा था। ऐसा पहली बार था, जब वो कुछ पूछ रही थी और मैं जवाब नहीं दे पा रहा था। सुहास और बच्चों के मन में क्या चल रहा था ? वो क्यों रो रहे थे ? मैं दुखी हूँ इसलिए या उन्हें दु:ख है इसलिए मुझे नहीं पता। ना उन्होंने कुछ बताया ना मैंने कुछ पूछा, हम चारों चुपचाप एक दूसरे से सटकर बैठे थे। सूनी आँखों से या तो ज़मीन को, छत को तकते या फिर कसकर एक दूसरे से लिपट कर रोने लगते। घर में खाना भी नहीं बना, बच्चों ने भी कुछ नहीं खाया। मेरे और सुहास के कुछ खाने या खाने के बारे सोचने का सवाल ही नहीं था। कब रात हो गई, पता नहीं चला। बच्चे हमारे पलंग के बगल में एक छोटे पलंग पर सोते थे। वो कब अपनी जगह पर रोते-रोते थक कर सो गए मुझे याद नहीं। सुहास भी सो गई थी, उसकी आँखों के कोने गीले थे, चेहरा पीला पड़ गया था। मेरी आँखों में नींद नहीं थी। मैं अपमानित महसूस कर रहा था, मैं निराश था, मैं हताश था, मैं अकेला था। मेरी सबसे प्रिय चीज़, मेरा काम मेरे हाथ से फिसल रहा था। मेरी ज़िन्दगी में मेरे काम के सिवा कुछ नहीं था। मेरा काम, मेरी शान, मेरा गुरूर, मेरी पहचान के खो जाने का भय मुझे सता रहा था, मैं डरा हुआ था। अगर काम नहीं, तो मेरे और सुहास के उन सब सपनों का क्या होगा? जैसी कितनी बातें मेरे ज़हन में खलबली मचा रहीं थी। मैं ऐसी ज़िन्दगी नहीं जी सकता था, जिसमें मेरे लिए लोगों की नज़र में बेगानापन हो। मैं ऐसी ज़िन्दगी नहीं जीना चाहता था, जिसमें मेरे लिए अपमान और उपहास हो। मैं ऐसे संसार में नहीं रहना चाहता था, जहाँ सही और ग़लत में अंतर नहीं किया जाता हो।

मैंने तय किया कि मैं ऐसी हर चीज़ को ठुकराता हूँ जो मेरे अपमान का कारण है। ऐसा सोचते हुए मैंने अपनी सर्विस रिवाल्वर उठा ली। अपने बारे में मैं निर्णय कर चुका तो मुझे सुहास का ध्यान आया कि मेरे बाद सुहास क्या करेगी ? वो मेरे बगैर कैसे रहेगी ? इतना कुछ तो मेरे पास नहीं है जिससे सुहास और बच्चों का काम चल जाए।.मेरे बाद सुहास इसी विभाग में? 'अनुकम्पा नियुक्ति' ...उह्ह्ह !! सोच कर ही मुझे वितृष्णा हो आयी मेरी सुहास !! और किसी की दया पर नहीं, कभी नहीं। सुहास भी मेरे साथ जाएगी। मैंने उससे पूछने की ज़रूरत भी नहीं समझी। उसने मुझे हमेशा उस पर मेरे अधिकार का एहसास दिलाया था। उसी एहसास ने मुझे अकेले ही सब तय करने का अधिकार दे दिया। जब मैं और सुहास नहीं रहेंगे तो बच्चे क्या करेंगे? जैसे हम चारों आज तक साथ रहे हैं, वैसे ही आगे भी साथ रहेंगे। बस मैंने चारों की ज़िन्दगी का फैसला कर लिया। मुझे कोई अफ़सोस नहीं था। सच को पराजित करने वालों, सच झुक नहीं सकता... मैं झुक नहीं सकता.. मेरा परिवार झुक नहीं सकता.. इन बातों के सिवा और कोई बात उस समय मेरे ज़हन में नहीं थी...। मैं जाने से पहले एक नोट लिखना चाहता था। मेरे हाथ में मेरा निलंबन आदेश था, मैंने उसके पीछे ही एक लाइन का नोट लिखा ..

'मैं अपने प्रिय लोगों को अपने साथ लेकर जा रहा हूँ अपने अंतिम सफ़र पर...'

रिवाल्वर कॉक कर मैंने सुहास की ओर निशाना साधा। सुहास का चेहरा देख मुझे उसके साथ बिताया हर पल याद आया, उसका सारा प्यार, देखभाल, हमारी नोंकझोंक, कितनी बातें, कितने सपने जो हमने साथ देखे थे, अपने और बच्चों के भविष्य के। वो इन छुट्टियों में कश्मीर जाना चाहती थी, इस साल उसने क्यारी में गुलाब की कलम लगाई थी, रोज़ वह गुलाब के खिलने का इंतजार रही थी। आज सुबह उसने बताया था कि वो बच्चों के लिए केक बनाने वाली है, पता नहीं बना पाई या नहीं ? अचानक ही मेरा मन हुआ था कि आख़िरी बार उसे कसकर सीने से लगा कर, विदा का चुम्बन उसके माथे पर दूँ। मेरी वज़ह से उसके सपने, उसकी ख़्वाहिशें पूरी नहीं हो

पाने के लिए उससे माफ़ी माँग लूँ, पर अपने सारे जज़्बाती ख़यालों को किनारे करते हुए मैंने मन ही मन उससे माफ़ी माँगी और ठीक उसके सीने पर अपनी आँखें बंद करके दो गोलीयाँ दाग दीं। मेरे पास अफ़सोस के लिए अवकाश नहीं था। तुरंत मैं बच्चों की ओर मुड़ा, दोनों गोली की आवाज़ सुन कर जाग गए थे। उन्हें अपनी ओर देखते देखकर मैं अन्दर तक हिल गया। उन पर फायर करने के ख़याल से ही मेरे हाथ-पैर काँपने लगे, पर अब मैं अपना निर्णय नहीं बदल सकता था; लेकिन अपने जिगर के टुकड़ों पर निशाना साध कर गोली चला पाने की हिम्मत भी मुझमें नहीं थी। दोनों टुकुर-टुकुर मुझे देख रहे थे डरे-सहमे से, अपने ही बच्चों को अपने से डरते देखकर मेरा मन ग्लानी से भर गया। कोई और दिन होता तो मैं उन्हें बाँहों में भर सीने से लगा, पीठ पर थपकी देते हुए कहता ''श!! डरो मत..मैं हूँ ना ...'' पर आज मैं उनसे आँख भी नहीं मिला सकता। क्या उन्होंने मुझे सुहास पर फायर करते देखा होगा ? सोचते हुए मैंने आँख बंद कर कमरे की दीवार और छत पर पाँच फायर किए। गोली कहाँ लगी, ये देखने की हिम्मत मुझमें नहीं थी और अब मैं बच्चों का सामना भी नहीं कर सकता था। सुहास के बगल में लेट कर मैंने अपनी कनपटी से रिवाल्वर का बैरल सटा कर आख़िरी फायर किया....।

...लगता है बाबू और भैया आ गये, सुहास के माँ-बाबूजी भी हैं साथ में। कमरे के अन्दर आते ही वे लोग बिलख पड़े बाबूजी कह रहे हैं... एक बार कुछ कहता तो। मैं भी यही चाहता था एक बार कोई मुझसे कुछ कहता तो...

....सारा अप्रत्यक्ष सारी वास्तविकता व्यक्त कर अब मैं हल्का महसूस कर रहा हूँ। सुहास का हाथ थामे मैं जा रहा हूँ ...अपने अंतिम सफ़र पर ....अनंत की ओर। मैंने जो किया वो सही था या ग़लत अब इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता ...हाँ बच्चों के लिए ज़रूर अफ़सोस रहेगा ...

❐❐❐

पुलिस अधीक्षक, पुलिस ट्रेनिंग स्कूल
माना, एयरपोर्ट रोड, माना, रायपुर
492001, छत्तीसगढ़
मोबाइल 9981504544
ईमेल rajshreemishra19@gmail.com

ग़ज़ल

लोकेश कुमार सिंह 'साहिल'

वक़्त का करवट बदलना देखते
लोग ग़र सूरज का ढ़लना देखते
लड़खड़ाने पर मेरे थे खुश बहुत
काश वो मेरा संभलना देखते
जो मेरी बच्ची की गोदी में रहा
उस खिलौने का बहलना देखते
वक़्ते रुख़सत सबने देखी है हँसी
आप अश्क़ों का मचलना देखते
ये बजा है रात मावस की मगर
तुम सितारों का निकलना देखते
शेरगोई में जो घुटनों से चला
आज उसका पाँव चलना देखते
पर्वतों से सागरों तक आ गई
शोख़ नद्दी का फिसलना देखते
बर्फ़ की सिल्ली सी लहरें हैं मगर
लोग 'साहिल' का उबलना देखते

❐

ये तमन्ना है कि मैं हर्फ़े-वफ़ा हो जाऊँ
मेरी बातें रहें बेशक़ मैं फ़ना हो जाऊँ
मेरे किरदार से अच्छाई की खुशबू आये
हर बुराई के लिए मैं तो बुरा हो जाऊँ
जिसमें तहज़ीबों के गुल साथ खिला करते थे
फिर उसी खुरदरी मिट्टी सा हरा हो जाऊँ
सबको बेदार करूँ ओम् की आवाज़ से मैं
वो जो आती है अज़ाँ से वो सदा हो जाऊँ
वो जो हिजरत के सबब लौट न पाये घर को
उन्हीं बिछुड़े हुए लोगों का पता हो जाऊँ
रूठ कर सबसे छिपूँ घर के किसी कोने में
इक खिलौने के लिए फिर से खफ़ा हो जाऊँ
इसी उम्मीद में दिन काट दिए हैं मैंने
ज़िन्दगी मैं तेरी रातों का दिया हो जाऊँ
जो मुझे छोड़ के जाते हैं वो पंछी सुन लें
कल नई रुत में फलों से न लदा हो जाऊँ
रेत के घर जो बनाते हैं यहाँ 'साहिल' पर
उन्ही मासूम से बच्चों की दुआ हो जाऊँ

❐

सी-104, भागीरथ पथ, श्याम नगर,
जयपुर 302019
मोबाइल 9414077820

सिलसिला इब्तिदा से जारी है
मौत जीती हयात हारी है
जितने आये हैं सब जमूरे है
एक वो ही तो बस मदारी है
आईना देखने की ताब नहीं
शर्मसारी सी शर्मसारी है
चाँद में दाग़ है ज़माने से
किसने इसकी नज़र उतारी है
दिन तो हँसते हँसाते बीत गया
आँसुओं अब तुम्हारी बारी है
हिचकियों का भरम तो टूट गया
अब तो पलकों की ज़िम्मेदारी है
साँस लेता है ज़िंदा रहने को
आदमी कितना कारोबारी है
फिर किसी मौज ने कहा 'साहिल'
नाव कागज़ की क्यों उतारी है

❐

कोई किस्सा कोई कहानी कर
अपने होने की कुछ निशानी कर
रेत ही रेत है यहाँ कब से
दुख के पर्वत को अब तो पानी कर
आबला पा यहाँ से गुज़रा हूँ
मेरे कदमों की तर्जुमानी कर
हर घड़ी काम की ही बातें क्या
कुछ तो जीवन को रातरानी कर
दिन तो हर रोज़ ही सुलगता है
कर कभी शाम ही सुहानी कर
धूप बारिश धनक नदी मिट्टी
फिर से इनके तू कुछ मआनी कर
रंग ग़ज़लों के खो गए 'साहिल'
चल ज़रा चूनरी को धानी कर

❐

खुद अपनी जगहँसाई चाहता है
जिसे देखो खुदाई चाहता है
उसे कुछ तालियाँ क्या मिल गईं हैं
अदब में रहनुमाई चाहता है
मेरी हर याद को वो रहन रख कर
ख़यालों से रिहाई चाहता है
समझ पाई नहीं दुनिया ये सौदा
क्यूँ सिंहासन चटाई चाहता है
गुज़ारी उम्र सारी क़ुर्बतों में
ये पागल अब जुदाई चाहता है
ये दरिया हो गया बेशर्म 'साहिल'
जो बूँदों की कमाई चाहता है

❐

सिनेमा एक कला और तकनीक

कृष्णकांत पंड्या

(कृष्णकांत पंड्या एक जाने-माने फिल्म निर्देशक हैं, जिन्होंने पूर्व में इस्माइल श्राफ के साथ सहायक निर्देशक के रूप में थोड़ी सी बेवफाई, आहिस्ता-आहिस्ता, दिल आख़िर दिल है, झूठा सच, लव 86 जैसी फिल्में कीं। फिल्म हत्या के एसोसिएट निर्देशक रहे और सूर्या फिल्म के चीफ एसोसिएट निर्देशक रहे। निर्देशक के रूप में उन्होंने पनाह और बेदर्दी जैसी फिल्मों का निर्देशन किया। इसके अलावा उन्होंने कई टीवी सीरियल्स का भी निर्देशन किया जिनमें रानी पद्मिनी, पृथ्वीराज, श्रीकृष्णा आदि धारावाहिक प्रमुख हैं। वे अभी भी फिल्मों में सक्रिय हैं तथा उनकी निर्देशित की हुई दो फिल्में शीघ्र रिलीज़ होने वाली हैं। शिवना साहित्यिकी के पाठकों के लिये वे धारावाहिक रूप से फिल्मों में लिखने की प्रक्रिया, स्क्रिप्ट, संवाद आदि के बारे में जानकारी देंगे, जिससे लेखकों को फिल्मों के लेखन के बारे में जानकारी मिल सके।)

दोस्तों इस पत्रिका के माध्यम से और इसके कर्ता धर्ता पंकज सुबीर की सोच की वजह से मुझे इसके पाठकों के लिए फिल्म क्षेत्र के अपने लंबे अनुभव को पहुँचाने का सौभाग्य मिल रहा है। इस में नए सिनेमा के हर पहलू पर आपसे रू-ब-रू होंगे। वैसे तो इस क्षेत्र पर बहुत अच्छी सामग्री छपती रही है पर मैं अपने प्रेक्टिकल अनुभवों के साथ इसके कलात्मक और तकनीकी पक्ष को आम बातचीत की तरह पेश करने का प्रयास करूँगा। फिर भी अगर मनोरंजन के इस विश्व प्रसिद्ध माध्यम की बातें आपको अगर कभी अरुचिकर लगें, तो कभी कोई सर्वगुण संपन्न नहीं होता, ऐसा समझकर मुझे क्षमा प्रदान करेंगे। फिल्म एक कल्पना या सच्चाई को सटीक तकनीक से बयाँ कर मनोरंजक व विचारोत्तेजक बनाने का ज़रिया है। सदियों से मनोरंजन के साधन इंसान ढूँढ़ता रहा है शायद सबसे पहला मनोरंजन प्रकृति की आवाज़ों और दृश्यों ने मानव को अचंभित करके दिया और फिर मानव ने उनकी नकल के माध्यम से और व अपने आप को मनोरंजित किया हो। ऐसे ही शुरूआत हुई होगी, पहाड़ों के बीच चिल्लाकर या जंगली जानवर की आवाज़ से पंछियों के कलरव व सांकेतिक चहचहाहट से या अपनी ही ताली की अनुगूँज से मनोरंजन कर के। फिर मिट्टी पर उँगली या तिनके से शौच के समय कुछ आकृतियाँ बना कर स्वयं अचंभित हुआ और दूसरों को मनोरंजन किया।

विकास क्रम में मानव ने इमिटेशन करने की शुरुआत कर गली मोहल्लों, पेड़ों की छाँव में एकल अभिनय से समूह में अभिनय मनोरंजन का माध्यम प्रारंभ किया, तो कभी किसी घटना दुर्घटना को प्रभावी तरीके से बता कर तरंगित किया या फिर डार्क कॉमेडी या तथाकथित ग्रे व ब्लैक मनोरंजन किसी की बुराई करके किया। बुराई दुनिया का सबसे प्रसिद्ध व आसान मनोरंजन है ना ? आपकी मुस्कुराहट मेरा व मेरी बात आपका मनोरंजन कर रही है या फिर अगर आप इसे प्रतिक्रिया में छिछोरी बात समझ रहे हैं तो यह वैसा ही होगा जैसा हम कोई फ़ूहड़ कॉमेडी व बनावटी रोमांटिक फिल्म देखते हैं।

फिल्म वही अच्छी लगती है जो सच्ची लगे अब इस बात को हम ज़रा यूँ कहें कि चाहे फैंटेसी हो या रियलिस्टिक पर वह बनावटी नहीं हो। ऐसे बनाई जाए हम उन भावनाओं में बह जाएँ चाहे हीरो हवा में उड़-उड़ कर गुंडों को पीट रहा हूँ या फिर हवाई जहाज को शहर के ऊपर उड़ा-उड़ा कर गुंडों को मशीन गन से मार कर, 50 किलो की हीरोइन को किसी ऊँची बिल्डिंग से हाथ पकड़ कर खींच ले, इसे हम कन्विक्शन कहते हैं और इसे पर्दे पर लाने के लिए सारी तकनीकों का सही व संवेदनशीलता के साथ प्रयोग करना होता है। एक पूरा का पूरा माहौल जो लेखक ने काग़ज़ों पर रचा है, उसे पर्दे पर साकार करने के लिए करीब 60 से लगाकर 200 लोग कार्यरत होते हैं। फिर भी भीड़ के दृश्य में वह संख्या सेंकड़ों से हज़ारों में होती है।

यह हुई फेंटेसी फिल्म की बात, ज़रा रियलिस्टिक फिल्म के सीन की बात। घर में हँसी-मज़ाक, नाच-गाना और खाना पीना साथ-साथ हो रहा है, अब इसे पिक्चराइज़ करने में जो माहौल हमारे फिल्म के सेट पर नहीं है, उसे सजीव इस तरह से करना है कि दर्शक उसका हिस्सा बनकर मनोरंजन करने लगें। दर्शक बैठा अपनी सीट पर है, पर वह महसूस करने लगे कि वह वहीं आस-पास उस भीड़ में उस घर में अदृश्य रहकर उसका आनंद ले रहा है। ऐसा लगे तो समझना चाहिए कि फिल्म के सभी तकनीकी पहलू सही काम कर रहे हैं। चाहे वो किरदार, उनके कपड़े, उन का चलना-फिरना, उठना-बैठना, नाचना, थाली-चम्मच बजाना और अपनी बातें शेयर करना। माहौल की आवाज़ों का सही होना, उनके चेहरे व स्थान स्पष्ट दिखना यानी कैमरा वर्क सही होना और फिर टुकड़ों-टुकड़ों में लिए गए पूरे सीन के हिस्सों को ज़रूरत के मुताबिक एडिट करना यानी एक के बाद एक टुकड़ा, जितना चाहिए उतना ही लगा कर पूरा दृश्य तैयार करना। फिर सब तरह की आवाज़ों का मिश्रण इस प्रकार करना कि चम्मच से खाना लेने की आवाज़ आ भी रही है पर वार्तालाप को डिस्टर्ब नहीं कर रही। इन्हीं सब तकनीकी पहलुओं के सामंजस्य से रियलिस्टिक सीन तैयार होता है। अब रियल लाइफ में कैमरा नहीं घूमता पर पात्रों का मूवमेंट होता है जैसे ड्रामा के स्टेज पर होता है, पर फिल्म में

निर्देशक अपनी कल्पना शक्ति से कैमरा मूवमेंट से दृश्य के हिस्सों को गति देता है, जो भावनाओं को स्पष्ट तौर पर व्यक्त करता है और सीन को गति देता है जिससे दर्शक ऊबता नहीं। इसे हम आगे चलकर विषय क्रम के हिसाब से बताएँगे।

फिल्म निर्माण के क्रम को हम मोटे-मोटे तौर पर चार भागों में विभाजित कर सकते हैं- 1. प्री प्रोडक्शन, 2. प्रोडक्शन, 3. पोस्ट प्रोडक्शन, 4. रिलीज़

1. प्री प्रोडक्शन

इसके अंतर्गत हम कहानी का चयन करते हैं। हम मतलब निर्माता या निर्देशक, या दोनों मिल कर उसे दृश्यों में विभाजित इस प्रकार करते हैं या लेखक से करवाते हैं कि कहानी में दर्शकों का मन लगा रहे। कौन सी बात या घटना कब बतानी है, पूरी बतानी है या हिस्सों में बतानी है। इसे हम स्क्रीनप्ले कहते हैं, यह एक तकनीक है और कहानी एक कला है। फिर उनको संवादों से मुखरित किया जाता है संवाद पात्रों की उम्र व्यवहार, चरित्र, उनकी कहानी में संभावित शैक्षणिक योग्यता और कहानी को गति प्रदान करने वाले और रुचिकर हों। इस प्रकार फिल्म की पूरी स्क्रिप्ट तैयार होती है जिसमें समय, काल, मौसम व स्थान लिखा होता है। फिर प्रारंभ होता है चरित्रों के हिसाब से कलाकारों का चयन। जिसके लिए ऑडिशन होता है, जिसमें हर किरदार के लिए 2-3-4 कलाकार चयनित कर, अंत में एक कलाकार को निर्देशक की नज़र में खरा उतरना होता है। साथ-साथ फिल्म के बजट पर निर्माता की टीम निर्देशक की टीम के साथ मिलकर तय करती है, जिसे निर्माता हरी झंडी तभी देता है, जब उसे बाज़ार से अंदाज़तन व्यवसाय हो जाने की हरी झंडी मिल जाती है। पर कुछ निर्माता जुनूनी होते हैं, जो पहले बना लेते हैं फिर व्यवसाय करते हैं, जैसा कि हर कारोबार में भी होता है। मैदान में ही ना उतरे तो क्या ख़ाक लड़ेंगे.....?

क्रमशः

❑❑❑

2603, ऑबराय स्पलेन्डर, मजास डेपो के सामने, जे.वी.एल.आर.
अंधेरी(पूर्व), मुम्बई 400060
फ़ोन 02228387112

समीक्षा

दहकते वर्तमान की कहानियाँ

वेदप्रकाश सिंह

तक़्सीम (कहानी-संग्रह)
लेखक : प्रज्ञा
प्रकाशक : साहित्य भंडार

तक़्सीम (कहानी-संग्रह)

स्त्री कहानीकारों की कहानियों में प्राय: एक तरह का जिया-भोगा अनुभव जगत मिलता है। यह सीमितता अनेक स्त्री रचनाकारों ने तोड़ी भी है। प्रज्ञा भी इसी व्यापक भाव संसार की कहानीकार हैं। 'तक़्सीम' उनका पहला कहानी संग्रह है। कहानी कहने में ही नहीं कथावस्तु के चयन में भी उनके यहाँ विविधता मिलती है। प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित ग्यारह कहानियों के इस संग्रह में वर्तमान और लगातार विगत हो रहे संसार के अनेक आयाम प्रस्तुत किये गए हैं। परिवार, प्रेम, धर्म, साम्प्रदायिकता, भूमंडलीय दबाव, राजनीति, निम्नवर्गीय, मध्यवर्गीय समाज के सपने, संघर्ष, अंर्तद्वंद्व, निम्नवर्ग के प्रति पूर्वाग्रह, स्त्री का जुझारू, असहाय रूप सब यहाँ दर्ज हैं। संग्रह के फ्लैप पर वरिष्ठ कथाकार हृषीकेश सुलभ ने लिखा है-''इन कहानियों का मूल स्वर गहन मानवीय संवेदनाओं और करुणा से निर्मित होता है। इन कहानियों के केंद्र में मनुष्य है और उसके चारों ओर फैला जीवन, जिनमें शामिल हैं अनेक मानवीय प्रपंच। इन्हीं प्रपंचों और व्यवहारों के उपकरण से प्रज्ञा अपनी कहानियों के अंर्तद्वंद्व को रचती हैं। ये अंर्तद्वंद्व ही इन कहानियों को बहुस्तरीयता और दीर्घ जीवन देते हैं।''

आज अनेक स्त्री कथाकारों ने समाज में पुरुषप्रदत्त अवमानना और शोषण को ही अपनी रचनाओं का उपजीव्य विषय बना लिया है। वह प्रज्ञा की कहानियों में उस रूप में नहीं मिलेगा। 'तस्वीर के पीछे' कहानी में रानी दीदी इसी अवमानना और शोषण की शिकार हैं। 'पाप, तर्क और प्रायश्चित' की मीनू और 'फ्रेम' कहानी की रावी और 'इमेज' कहानी की रूपल दी भी इसे झेलती हैं। लेकिन कहीं भी ऐसा नहीं लगता है कि इनमें कहानीकार ने यांत्रिक ढंग से पूर्वनिर्धारित मान्यतानुसार स्त्री को शोषित-अपमानित ही दिखाने की चेष्टा की हो।

समाज को संपूर्णता में देखने का आग्रह रखने वाला रचनाकार परिवार संस्था को उसके नफे-नुकसान के साथ अवश्य प्रस्तुत करेगा। व्यक्ति की कहानी होते हुए भी उसे उसकी संपूर्णता में दिखाने की कोशिश कहानीकार ने की है। 'फ्रेम', 'बराबाद'...नहीं आबाद', 'अमरीखान के लमडे', 'पाप, तर्क और प्रायश्चित', 'तक़्सीम', 'रेत की दीवार', 'तस्वीर के पीछे' इन सभी कहानियों में व्यक्ति और विचार प्रमुख होते हुए भी परिवार की कथा सामने आती है। परिवार संस्था एक मूल्य की तरह इन कहानियों में मौजूद है। लेकिन उसे जबरन बचाने या दोषमुक्त करने की भी कोशिश नहीं की गई है। इस संस्था को नर्क बनाने वाली स्थितियाँ और किरदार भी यहाँ हाज़िर हैं। 'तस्वीर के पीछे' कहानी की रानी जितनी अच्छी और 'सदाप्रसन्न' हैं उनका जीवन उतना ही दारुण। सतत यातना पथ पर चलती हुई रानी। रानी के पति रामप्रकाश जैसे परिवार-विनाशक किरदार के बावजूद भी कहानीकार प्रज्ञा ने परिवार संस्था को स्त्री के समस्त दुखों का ज़िम्मेदार नहीं माना है। यह उन्हें वर्तमान स्त्री कहानीकारों से अलग करने वाला सबसे बड़ा लक्षण है। ऐसे क्रूर पति का अपमान और मार और उससे उपजी बीमारी सहते-सहते एक दिन रानी दीदी मर जाती हैं। लेकिन इस स्थिति को बदलने के लिए कोई बड़ा कदम नहीं उठाती हैं। उठातीं तो शायद अतिरंजित लगता लेकिन ऐसे किसी प्रयास का अभाव पाठक को खलता है।

यह असहायता समाज द्वारा पैदा की गई है। आज अनेक कहानीकारों ने स्त्री की इस

यातना को 'कथानक रूढ़ि' की भाँति प्रयोग कर रहे हैं। इस चलन से कहानीकार भी परिचित होंगीं। इसलिए उनके पात्र विविधरंगी हैं। अगर उपर्युक्त बात यहाँ भी सच होती तो 'बरबाद...नहीं आबाद' कहानी में सुनीता जैसी दुर्दमनीय पात्र प्रज्ञा नहीं रच पातीं। सुनीता इस कहानी-संग्रह की सबसे मज़बूत पात्र है। सुनीता में रानी दीदी की ही तरह सदैव प्रसन्न बने रहने का गुण है। वह लोगों के घरों में चौका-बर्तन कर अपना और अपने बच्चों का पेट पालती है। उसकी ज़िंदगी भी अनेक परेशानियों - दुखों के आघात-प्रतिघात से निर्मित है। उसके सर्वहारा वर्ग से होने के चलते ही मानो उसमें लड़ने और लड़कर जीतने की अदम्य क्षमता स्वत: आ गई है।

अपनी कहानी पूछे जाने पर कहती है- ''क्या करोगे जी इस गरीबनी का दुख जानकर? क्या कहूँ...आदमी चला गया, ससुराल वालों ने धोखा कर दिया और छोड़ दी मैं भटकने को। घरों में काम करके बेटे-बेटी पाले। सादियाँ कर दीं। अब छोटे की बाकी है। लाख है मेरा बेटा। नसीब वाली होगी उसकी औरत पर तकदीर में जाने क्या लिखा है। दो साल पहले जब बड़े की सादी की थी तो इसे उसकी साली पसंद आ गई थी। जी लड़की भी चाहे थी इसे, मैंने बात भी चलाई पर बहू की माँ नट गई-एक घर में दोनों बेटी न देगी।'' कारण कुछ और ही था छोटी बेटी की इस घर में शादी न करने का। लेकिन सुनीता का मन इससे भी मलिन नहीं होता। वह इस लड़की की शादी और उसमें परेशानी आ जाने के बाद भी उसे अपने घर की बहू बनाने के लिए तैयार है। लेकिन वह भी नहीं हो पाता। जब दूसरी लड़की पसंद की जाती है तो वहाँ भी परेशानी आने लगती है। लेकिन सुनीता और उसकी भावी समधिन मिलकर यह शादी करवा देती हैं। लड़की का बाप उसकी शादी नहीं करना चाहता था। वह लड़की को अपने लिए रखना चाहता था। पूरी घटना सुनीता यूँ बताती है-''जी लड़की की माँ भगा लाई है लड़की को कसाई से छुड़ाके। कहीं नहीं करनी थी सादी उसे लड़की की। अब कहता है मैं रख लूँगा इसे अपने लिए। माँ नट गई तो रोज मारता-पीटता है। दोनों जनियों की जिनगी नरक कर रखी थी। लड़की की माँ मौका देखकर भगा लाई है।

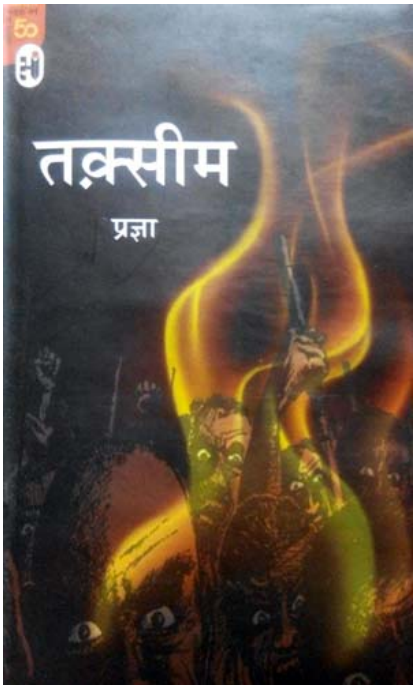

मेरे पास फोन आया था। प्रिंस के साथ निकलूँगी छह वाली गाड़ी से।''

सुनीता की ही तरह हारकर भी न हारने वाली एक और पात्र है 'इमेज' की रूपल दी। जीवन को बेहतर बनाने के लिए रूपल दी साधन और व्यवहार में सुनीता से बिलकुल अलग है। वह सही-ग़लत तमाम तरीकों से जीवन को बेहतर बनाना चाहती है। असुरक्षित जीवन से सुरक्षित-संपन्न जीवन में जाना चाहती है। इसके लिए झूठ सच सबको अपनाती है। पार्लर के साथ राजनीति में जाने का सपना भी टूट जाता है। लेकिन वह हार नहीं मानती है। कहानी 'पाप,तर्क और प्रायश्चित' की मीनू के जीवन के दो बिलकुल विपरीत रंग दिखाए गए हैं। एक बिलकुल अल्हड़, मस्तमौला, सबका दिल जीत लेने वाली, कभी उदास न रहने वाली मीनू है। और दूसरा रूप उस मीनू का जो नितांत असहाय होकर अपने जीवन का धर्म और घर के लिए बलिदान कर देती है। एक घटना उसके पूर्ववर्ती रूप को बदल डालती है। वह है प्रेम। यह प्रेम भी असफल रहता है। लड़का मुस्लिम है और लड़की हिंदू। लोग लव जिहाद की बात भी बीच में लाते है। मीनू की पढ़ाई बीच में ही छुड़वाकर धर्म की भेंट कर दी जाती है। अब वह मीनू नहीं साध्वी मीनाक्षी बन जाती है। पहले से बिलकुल विपरीत रंग-ढंग वाली मीनू।

'पाप, तर्क और प्रायश्चित' और 'फ्रेम' कहानियाँ प्रेम के असफल रूप को दिखाती हैं। एक में मीनू और इमरान की कहानी है तो दूसरी में रावी और जतिन की। दोनों में लड़की के घरवाले पढ़ाई-नौकरी छुड़वाकर उन्हें घर की चारदीवारी में बंद कर देते हैं। इस तरह की घटनाएँ समाज में बहुतायत में घटित होती हैं। अपने प्रेम को पाने के लिए कुछ भी कर जाने वाली कुछेक घटनाएँ भी होती है, ऐसी स्थितियाँ इन कहानियों में नहीं आ पाई हैं। पत्रकारिता के पेशे के कई सच बयान करती 'एहसास' कहानी में नवेद और झूमा की सफल प्रेम कहानी का जिक्र जरूर आता है। लेकिन वे कभी कहानी के रंगमंच पर उपस्थित नहीं होते। मुख्य न होकर वह नेपथ्य कथा की भाँति ही आती है। समाज में अभी भी लड़के-लड़की को साथी चुनने का अधिकार नहीं दिया है इसकी तसदीक इन असफल प्रेम कहानियों से होती है।

आज के दौर में भूमंडलीकरण देश, समाज और व्यक्ति को अपने अनुकूल बदल रहा है। जो कमज़ोर पड़ रहा है उसे हाशिये पर पहुँचाया जा रहा है। 'इस ज़माने में' कहानी के जोशी जी इसी तरह के पात्र है, जो बाज़ार के फैलाव के कारण हाशिये में सरका दिये जाते हैं। जोशी जी कॉलेज के स्टाफ रूम में चाय ही नहीं बनाते हैं, वे उस माहौल को भी रचते हैं जो इस जगह को और खुशनुमा बनाता है। लेकिन बाज़ार व्यक्ति के स्थान पर मशीन का पक्षधर बनकर सामने आ रहा है। सुविधा का झाँसा वह सामने प्रस्तुत कर रहा है। जोशी जी की जगह चाय-कॉफी बनाने की मशीन आ जाती है और वे पार्किंग में 'शिफ्ट' कर दिये जाते हैं। एक मशीन आने से एक रोज़गार भी जा रहा है, पुरानी खुशदिल संबंध व्यवस्था भी दरक रही है, इसकी चिंता किसी को नहीं है। मनुष्य की सभी ज़िम्मेदारियों का निर्वाह नया समाज मशीन से पूरी करवाना चाहता है। इसी सामाजिक रूपांतरण की कहानी है 'इस ज़माने में'।

कहानी में व्यक्ति-चित्र खींचने में लासानी हैं प्रज्ञा। ये कहानियाँ भाव-विचार के वायवीय आधार पर नहीं ठोस दिखने वाले, पहचाने जा सकने वाले व्यक्तियों के इर्द-गिर्द बुनी गई हैं। ऐसे ही अविस्मरणीय पात्र हैं 'अम्रीखान के लमड़े' कहानी के भाई जी। भाई जी उस दुर्लभ होती जा रही पीढ़ी

के आखिरी निशान हैं जो अपने से छोटी उम्र वालों को डाँट-डपट सकते हैं। उनकी डाँट-डपट का कोई बुरा भी नहीं मानता। गली मुहल्ले में उनकी दबंगई है। वे खुद सफल उद्यमी हैं और दूसरों को भी नये-नये व्यावहारिक-अव्यावहारिक नुस्खे बताते रहते हैं। उनको न कहने की हिम्मत किसी में नहीं। वे अपने प्रयोगों में विफल होते है, जग हँसाई होती है। फिर भी वे एक नया नुस्खा लेकर तैयार मिलते हैं। कहानी इतनी रोचक और पठनीय है कि पाठक कहीं रुकता ही नहीं। लेकिन भाई जी के अंतिम दिन बड़े पीड़ांतक रहे। शरीर से भी अशक्त हो गए। और एक दिन वे भी खत्म हो गए। कहानी दृश्यों में सामने आती है और अंत में एक टीस पाठक को देकर खत्म हो जाती है। इस कहानी की क़िस्सागोई पाठक पर अपना अमिट असर छोड़ती है।

संग्रह की सबसे बड़ी और शीर्षक कहानी 'तक़्सीम' है। तक़्सीम यानी बँटवारा। जो बँटवारा 1947 में हुआ था और वह आज भी चल रहा है। कायदे से यह हिंदू-मुसलमानों का बँटवारा तो औपनिवेशिक शासन के दौरान सन सत्तावन की राज्य क्रांति के बाद से ही समाज में गहरे जाकर रोप दिया गया था। अब इसका विष वृक्ष सामने आ खड़ा हुआ है। यह कहानी हिंदू मुसलमान के मध्य सांप्रदायिक विद्वेष को दिखाती है। दोनों कौमों के लोग अभी भी अमन चैन के साथ रहना चाहते हैं। वे सुख दुख में एक दूसरे के काम आते हैं। लड़ाने वालों को दोनों ही पहचानते हैं। लेकिन बाँटने वाले इतने संगठित और आक्रामक हैं कि दोनों धर्मों के आम लोगों की जान साँसत में कर रखी है। कहीं चोरी हो तो हिंदू कहता है मुसलमान तो जन्मना ही अपराधी होते हैं। पुलिस भी उन्हीं पर शक करती है, मारती पीटती है।

'तक़्सीम' जमील की कहानी है। और कुछ कुछ अनोखे की भी। जमील उत्तरप्रदेश के खतौली से उखड़कर दिल्ली में कबाड़ी का काम करने लगा है। वहाँ न रोजगार था न सुख चैन। साथ में बढ़ता सांप्रदायिक तनाव भी दिल्ली आने का कारण बना। लेकिन इस सांप्रदायिकता ने जमील का पीछा दिल्ली में भी न छोड़ा। बिना अपराध किये भी उसे अपराधी बना दिया जाता है। चोरी की घटना के बाद नाहक ही जेल जाना

पड़ता है, वह दूसरा मुहल्ला देखता है। अपने जीवन को, परिवार, माता-पिता, पत्नी-बच्चे सबको खुशहाल बनाना चाहता है। लेकिन सांप्रदायिक शक्तियाँ उसका शत्रु बनकर उसके जीवन को नर्क बना देती हैं।

भटके बेरोज़गार नौजवानों को गाँव-शहर सब जगह घोर सांप्रदायिक बना दिया जा रहा है। वे आक्रामक और राष्ट्रभक्त एक साथ हो रहे हैं। मारने-मरने पर उतारू हैं। साथियों को भी अब धार्मिक खाँचों में ही बाँटकर देखने के अभ्यस्त हो चले हैं। मीडिया, प्रशासन, राजनीति सब इसमें अपने हित साध रहे हैं। इस सांप्रदायिकता के साधन हैं बेरोज़गार भटकते दिशाहीन युवक। ऐसा ही एक साधन है उमेश। वह मुस्लिम-विद्वेष से भर दिया गया है। गोधरा के दंगे हों अथवा मुजफ्फनगर के युवकों ने इसमें सबसे बड़ी भूमिका निभाई है। धार्मिक राजनीति करने वाले उन्हें बदले की हिंसक भावना से भर दे रहे हैं।

गोधरा-गुजरात की घटना के बाद का माहौल गाँवों को भी अपनी गिरफ्त में ले चुका था-''इस बार शोर वैसा ही था और माहौल में सनसनी फैली थी।'' ''बदला तो हम लेके रहेंगे। छोड़ेंगे नहीं। समझ क्या रखा है?'' -उमेश का स्वर बड़े दृढ़ निश्चय के साथ निकला। अखबार और टीवी की खबरें गाँव भर में फैल चुकी थी। खबरों पर सवार जलजला गाँव में दाखिल हो गया। गाँव में हिंदू-मुसलमानों की संख्या बराबर थी पर देश में किसका पलड़ा भारी है हर कोई जानता था और इसी बीच हिंदू नौजवानों को अपना देश और अपना धर्म बचाने के रास्ते पर डाल दिया गया था। इनमें से कई भटके नौजवान अपने बचपन के दोस्तों से देश में रहने और देशभक्ति की कीमत अदा करने की बात करने लगे। उस दिन जमील, युसुफ से भी उमेश इसी हक से बात कर रहा था। पुलिया पर बैठना मिनट-मिनट भारी हो चला जमील और युसुफ के लिए। एक काला सन्नाटा तारी था वहाँ। उस सन्नाटे में वीर पुरुष की तरह प्रकाशवान था उमेश।'' यह स्थिति गाँव-शहर हर ओर फैलती गई। छोटी-छोटी घटनाएँ सांप्रदायिक दंगों का कारण बनाई जाने लगीं। कहीं माता की चौकी, कहीं माँस का लोथड़ा, कहीं और कुछ। दंगे करवाने के लिए कुछ भी कारण बनाया जाने लगा। अपने फायदे की रोटियाँ सेंकने वाले लोग जमील और अनोखे जैसे न जाने कितने बेकसूरों की आहुतियों को लिये बैठे हैं। दंगे कितने सुनियोजित ढंग से करवाये जा रहे हैं इसकी बानगी भी इस कहानी से मिलती है। मरने वाले अनगिनत बेकसूर उसकी चपेट में आ जाते हैं। एक जीवन कैसे देखते देखते नष्ट हो जाता है इसे भी यह कहानी बड़ी सरलता से दिखाती है। दंगे कैसे मनुष्य विरोधी, जीवन विरोधी होते हैं इसकी पहचान यह कहानी करती है। गौग्रास का प्रसंग भी इस कहानी को मौजू बनाता है।

कहानी कहने और रचने की कला कहानीकार के पास है। किस्सागोई और संवाद दोनों ही शैलियों से ये कहानियाँ शुरू होती हैं। लगभग पाँच कहानियाँ संवादों से आरंभ होती है। नाटकीयता का गुण प्राय: सभी कहानियों में मौजूद है। वर्णन करने में कहीं प्रथम पुरुष में तो कहीं अन्य पुरुष की भूमिका आती-जाती रहती है। क़िस्सागोई ऐसी कि घटनाएँ सामने से गुज़रती मालूम पड़ती हैं। कहीं भी शिथिलता या रुकावट महसूस नहीं होती। भाषा में हिंदी उर्दू दोनों के चलते शब्दों का सहारा लिया गया है। कहीं-कहीं आम हो चुके अंग्रेज़ी शब्दों का भी प्रयोग मिल जाता है। कुछेक कहानियों में बोलियों और क्षेत्रीय टोन को भी लाने का प्रयास कहानीकार ने किया है। इन कहानियों में कहीं भी जल्दबाज़ी देखने को नहीं मिलती है। कहानीकार के पास कहने की कला के साथ असीम धैर्य है। इस धैर्य के बल पर वह कहानी के मर्म को आराम से बाद में जाकर ही खोलने का प्रयास करती हैं। संग्रह की भूमिका में वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी ने सही ही कहा है-''प्रज्ञा सचेत कहानीकार हैं। बड़ी बात यह कि वे विचारधारा या वैचारिकता को सहज जीवन-सरणियों में लुप्त करके व्यंजित करती हैं। वे संभावनापूर्ण रचनाकार हैं।''

❐❐❐

समीक्षा

अभिनव शिल्प के 'कैनवास पर प्रेम' रचती हुई कूची का जादू

डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'

कैनवास पर प्रेम (उपन्यास)
लेखक : विमलेश त्रिपाठी
प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ

कैनवास पर प्रेम (उपन्यास)

महीनों पहले की बात है जब 'कैनवास पर प्रेम'जैसी प्रेम कथा को पढ़ते हुए मैं भले कई-कई बार टूटा था पर कथा का क्रम नहीं टूटा था। उसकी एकरसता भंग नहीं हुई थी। उसे जब तक पूरा नहीं कर लिया शायद चाय भी नहीं पी थी। कथा का रसपान करते हुए कोई दूसरी प्यास जागी ही नहीं थी। कहीं यही तो नहीं है आलोचकों की दृष्टि वाला कथा रस?

इसे पढ़ने के पहले कथा सूत्र जानने के लिए या यह कहें कि भेद पाने के लिए नेरेटर की शरण में चला गया वहीं मुझे शक के कीड़े ने काट लिया। मुझे शक कैसे न होता। जब कथाकार ही भ्रमित कर दे तो पाठक का क्या दोष? वह खुद कहता है,'मैं जानता हूँ कि चाहे मैं कितना भी कह लूँ, मतलब कसम-वसम खा लूँ लेकिन इस लिखे हुए को आप कथा मान कर ही पढ़ेंगे।...इसमें कथा के गुरुओं के द्वारा गिनाए गए तत्त्व-अवयव नहीं भी मिल सकते हैं। यह एक अनुभव है जिसके साथ मैं यात्रा करूँगा।...टुकड़े-टुकड़े में की हुई बात अगर कथा का रूप ले ले तो मुझे कोई आपत्ति भी नहीं। और यह भी तो तथ्य है कि कथा और होती क्या है, वही न जो पहले घट चुकी है या चुकी नहीं है तो वर्तमान में भी अविरल घट रही है।'

पढ़ते समय यह उपन्यास अपने समग्र घटना क्रम और उसके अविखण्डित सातत्य के साथ मेरे जीवन में भी अविरल घटित हो रहा था। नेरेटर के स्पष्ट रूप से यह कहने के बावजूद कि, 'जब कभी जहाँ कहीं आपको लगे कि आप और साथ नहीं चल सकते तो आप लौट सकते हैं।' मुझे कहीं लगा ही नहीं कि अब आगे की कहानी नहीं सुनी जा सकती या अब नहीं, तब लौट लेना चाहिए।

नेरेटर ने ही सबसे पहले चित्रकार सत्यदेव शर्मा से परिचय कराया। वे अपने ही कुल गोत्र के लगे। अत: उनसे पहली भेंट में ही अपनत्व सा हो गया।

यह पहला उपन्यास मुझे पढ़ने को मिला जिसमें कथाकार और नेरेटर के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा है। दोनों के भिन्न रूप पहचानने में आते हैं। सत्यदेव शर्मा से नेरेटर की पहली भेंट बारिश वाली रात में हुई थी। उस रात, 'बारिश तेज़ हो रही थी। –रात बढ़ रही थी। और एक आदमी पेड़ के नीचे चुपचाप खड़ा था। सामने कैनवास जैसी कोई चीज़ भीग रही थी-रंग की कुछ शीशियाँ -एक-दो कूची। वह हाथ में कूची लिए खड़ा था। इस बात से भी अनासक्त कि कोई अजनबी उसे देर से घूरे जा रहा था।'

इस कथा की सबसे बड़ी ख़ासियत यही है कि कथानायक के मौन के बावजूद नेरेटर बड़ी चालाकी से बिखरे कथा सूत्रों को कथाकार के हवाले करता जाता है और कहानी स्वत: विकसित होती चली जाती है। जहाँ कथा के विकास की आती है, सत्यदेव के विषय में वर्णनकर्ता का यह कथन बहुत मायने रखता है कि,'मैं मिला हूँ सत्यदेव से। वह इतना चुप रहते हैं कि हूँ हाँ से अधिक बोलते ही नहीं और आप सवाल पर सवाल पूछे जा रहे हैं –मैं उनके बारे में बहुत कुछ नहीं बता सकता।' इस कथन के पीछे नेरेटर की चालाकी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है कि वह कथा सूत्र अपने ही हाथ में रखना चाहता है। कथानायक के हाथ में देकर वह उसे उतनी आसानी से मोड़ नहीं सकेगा जैसे कि अपने हाथ में रखकर। तभी तो वह कथाकार पर खीझते हुए उससे सत्यदेव के बजाय अपने दुख-दर्द कहने लगता है,'हँसते क्यों हो? मेरे पास बहुत कम समय है। घर है। नौकरी है। बच्चे हैं। ऊपर से तुम क्यों आ गए हो? मैं पहले से ही बहुत परेशान हूँ यार। यह जो मेरी पत्नी है,जो सो रही है, चादर तानकर-इसे झगड़ने की बुरी आदत है। मेरी किताबों पर इसकी सख्त नज़र है। कभी उसके पल्ले पड़ गए तो कथा-वथा सब भूल जाओगे।' अत: शुरू-शुरू में कथानायक कठपुतली से अधिक कुछ नहीं लगता। बीच-बीच में यह भी लगता है कि कहीं सत्यदेव के बहाने नेरेटर अपनी जीवन गाथा तो नहीं सुनाना चाह रहा है। अपनी और सत्यदेव की ज़िंदगियों के बीच कहीं कोई रूपक तो नहीं रच रहा है। लेकिन उपन्यास पूरा होते-होते पता चल जाता है कि ऐसा कुछ भी नहीं था। कथाकार एक चित्रकार के मौन को विराट उद्देश्य के साथ जोड़ना चाहता था। अंतत: वह उसमें सफल भी होता है।

तीसरे सोपान तक आते-आते वर्णनकर्ता अपने से मोह त्यागकर सत्यदेव की तरफ प्रस्थान कर ही देता है। यद्यपि जो सत्यदेव

है,उसमें सत्यदेव है ही नहीं। मूल सत्यदेव तो नेरेटर ही है,जो अपनी कहानी को सत्यदेव जैसे उस भोले चरित्र वाले चित्रकार के गले मढ़ देता है जिसका,'सत्य मिटने लगा है,उनके अंदर बैठा कोई देव मर-सा गया है।' असल में तो उस कलाकार की कूची भी कूची नहीं कलम लगती है जिससे नेरेटर के जीवन की बातें टुकड़े-टुकड़े यानी टीपों में दर्ज़ की गई हैं। नेरेटर की पत्नी जिसे हमेशा शक होता रहता है। उसकी इसी संदर्भ की एक यह टीप इस तथ्य को और भी पुष्ट करती है-'वह ज़रूर आएगी यह देखने के लिए कि इतनी रात को एक कमरे के अंदर अँधेरे में मैं क्या कर रहा हूँ। उसे हमेशा शक होता रहता है कि मैं अँधेरे में कई दूसरी लड़कियों से फोन पर बातें करता हूँ। आप जानते हैं न फेसबुक के आने के बाद यह शक और बढ़ा है-यकीन की हद तक।'

चौथे सोपान की शुरुआत में ही सत्यदेव शर्मा का 'एक टाली का घर' पड़ता है,जिसमें 'तीन टिनहे बक्से' और 'एक चौकी' है। उस चौकी पर, 'न जाने कितने समय से फालतू कह दिए जाने लायक सामान रखे हैं। पूरे घर में दो कैनवास, जो बारिश के पानी से सद चुके हैं। उनपर पता नहीं कितने दिन से कपड़े को कसकर कैनवास का रूप दिया गया है। कैनवास पर कोई रंग नहीं। अगर रंग है कोई तो वह स्याह है। यहाँ नेरेटर ने चित्रकार के जीवन और कैनवास में बहुत सुंदर रूपक बाँधा है। वह कहना चाहता है कि कैनवास की स्याह पृष्ठभूमि कुछ और नहीं चित्रकार की असल ज़िंदगी ही है। लेकिन यह हमेशा से ऐसी नहीं रही है। इसी कैनवास की स्याह पड़ चुकी पृष्ठभूमि में कभी रंगीन तितलियाँ थीं। इसी पर फ्राक पहने मैना रहती थी जिसकी फ्राक पर भी लाल-पीली तितलियाँ बैठ जाती थीं। मयना और सत्यदेव के बचपन के दिन कितने रंगीन थे वे।

'तितलियों की तरह के दिन थे। दिन थे सरसों के फूलों की तरह। अंतत: खूब उजली गाय की तरह के दिन थे। वे दिन धीरे-धीरे बड़े होते गए थे।' बचपन के उन दिनों और आज बड़े हो जाने वाले दिनों में एक बात है जो बिलकुल नहीं बदली है। आज भी वैसी की वैसी है कि ये तितलियाँ

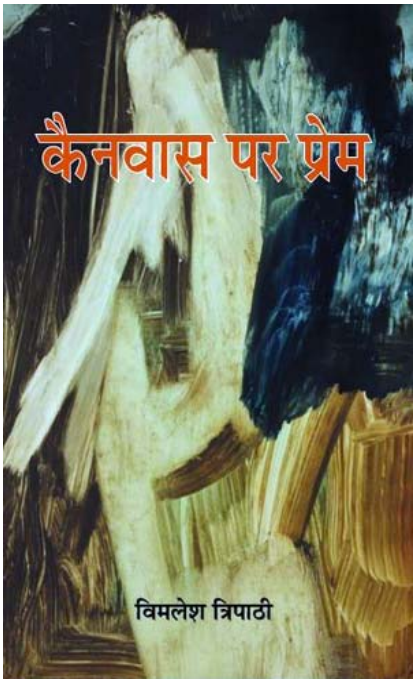

कभी उसकी पकड़ में नहीं आईं। अब तो वे दिखती भी नहीं इसलिए उसकी ज़िंदगी के कैनवास की स्याही उसे और भी चिढ़ा रही है।

इसी सोपान में कथा के भीतर बिदेसिया नाच और दान-दहेज़ के साथ वह गाँव भी चुपके से घुस आता है, जहाँ आज भी मुसलमान होने के नाते सैफू खाट पर नहीं बैठ सकता। वह पतरकी के करीब नहीं आ सकता। उसको चुल्लू में पानी पीना पड़ता है। सत्यदेव जैसे ब्राह्मण के घर में उसके लिए कदम रखना तक वर्जित है। रखता भी है तो '-मिया मुकड़ी जात तेरी हिम्मत कैसे हुई मेरे घर में कदम रखने की।' जैसे अपमान जनक शब्द सुनने पड़ते हैं और उसके दोस्त सत्या को भी उन शब्दों को निगलने के अलावा कोई चारा नहीं रहता। यह गाँव अपने व्यास के विस्तार के साथ हर उस गाँव को अपनी परिधि में ले लेता है जिसकी स्त्रियाँ एनीमिया की मरीज़ हैं-'धरती की सारी माएँ बाँस की खाट पर लेटी हुई हैं। अधमरी हो रही है, हीमोग्लोबिन की कमी से।' चित्रकार सत्यदेव की चिंता उपन्यासकार की मूल चिंता है जिसे वह अपने रक्त से रंगना चाहता है। गाँव हो और उसमें मठ-मंदिर, मस्जिद या गुरुद्वारा न हो और उनमें चमत्कार न हों तो गाँव किस बात का। इसलिए वर्णनकर्ता यानी नेरेटर के दादा चंद्रमणि शर्मा अपने गाँव से 10-15 किमी दूर आने गाँव की अपनी पुश्तैनी ज़मीन पर मठिया बना के रहने लगते हैं। उनकी दाढ़ी बढ़ जाती है तो साधु बन जाते हैं और लोग झाड़-फूँक के लिए भी आने लगते हैं। अपनी इन्हीं खूबी-खामियों के साथ गाँव भी इस कहानी में अपनी उपस्थिति बड़े ज़ोर-शोर के साथ गोली की तरह सननाता हुआ दर्ज़ कराता है-'नाच हो रहा है। जोकर हँसा रहा है ....अश्लील फब्तियाँ कस रहा है। पीछे बैठा एक मोटी मूँछों वाला आदमी दुनलिया से कभी-कभी फायर करता है।' इस तरह गाँव तक पाँव पसार चुके माफिया राज का संकेत करके विमलेश त्रिपाठी ने अपने सामाजिक सरोकारों के साथ राजनीतिक अभिरुचि का भी परिचय दे दिया है।

'कैनवास पर प्रेम' की औपन्यासिक काया के भीतर काव्यात्मा की गंध इसे और सरस बना देती है। इसी काव्यात्मा के साथ अर्धरात्रि में निशाचरों की तरह भटक रहे कथाकार और सत्यदेव के बीच नेरेटर भी हो लेता है। वह प्रकृत्या कवि है इसलिए उसे चित्रकार के करुण जीवन पर तरस भी आता है। जब वह अपने कथानायक के मुँह से कवीन्द्र रवीन्द्र का वह कारुणिक गीत सुनता है, जो जैसे उसी (चित्रकार) के लिए ही लिखा गया हो तो स्वयं भी करुणा विगलित हो उठता है -'आमारे यदि जागाले आजी, नाथ/फिरो ना ताबे फिरो ना, करो/करुण आँखीपात।(मुझे यदि आज जगाया तो हे नाथ लौटो मत,मेरे ऊपर करुण दृष्टिपात करो)'

एक रचनाकर की मनोवैज्ञानिक संरचना से कथाकार अच्छी तरह वाकिफ़ है। उसके अवचेतन के भीतर नाना प्रकार के आलोड़न-विलोड़न चेतन जगत से जैसे काटे रहते हैं। वह बाहरी दुनिया से अधिक अपने भीतर की दुनिया से जुड़ जाता है। धीरे-धीरे जब बाहरी दुनिया उसके इस व्यवहार को असामान्य कहती है तो इससे उसकी छटपटाहट और बढ़ जाती है। 'कैनवास पर प्रेम' की लकीरें खींचते हुए रचनाकर के भीतर भी यही उद्वेलन है। इस दृष्टि से भी यह उपन्यास मनोविश्लेषणवादियों का भी ध्यान अपनी ओर खींचे बिना नहीं रहता। सत्यदेव शर्मा भी सीजोफ्रेनिया, उद्वेलन और कुछ अवसाद की मिलीजुली मन: स्थिति से गुज़र रहे हैं

–'नहीं..नहीं..... एक घर दिला दीजिए। यहाँ लोग मुझे बहुत तंग करते हैं।' कौन तंग करता है उन्हें। यह वे नहीं जानते। इस प्रश्न के उत्तर में वे कहते हैं–'ये तो पता नहीं। लेकिन कई लोग हैं। एक औरत मेरी खिड़की से एक गंध छोड़ जाती है। रात भर उसकी बदबू से मुझे नींद नहीं आती। एक आदमी मुझे हंटर लेकर मारने दौड़ता है,मैं घर छोडकर बाहर निकाल जाता हूँ घर आने का मन नहीं करता। आपके आने से पहले एक औरत सिंदूर जैसा लाल रंग मेरे चेहरे पर फेंक कर गई है। देखिए...दिख रहा है वह लाल रंग मेरे चेहरे पर?...–लोग मुझे सोने नहीं देते। कोई एक आता है और मेरे सीने के अंदर घुस जाता है। फिर वह मेरे अंदर रात भर टहलता रहता रहता है। विमल बाबू...ढेर सारे लोग हैं जो मेरे कमरे में घुस आते हैं। वे कहाँ से आते हैं मुझे पता नहीं चलता।' ऐसी अवस्था में वह जो कुछ करता या कहता है उसके यथार्थ को वह नहीं जान पाता है क्योंकि यह सब उसका चेतन नहीं अवचेतन कर रहा होता है। इसलिए वह स्पष्ट रूप से घटित को जान –समझ नहीं पाता। यह न जान पाना ही उसकी मानसिक बीमारी को प्रमाणित कर देता है। समकालीन रचनाकर के इस मानसिक उद्वेलन के लिए समय और समाज दोनों ज़िम्मेदार हैं। यह अनावश्यक रूप से खतरनाक होते जा रहे समय के लिए चेतावनी है। समाज की चेतना को जगाने के लिए भी कविमन की आकुलता उन चित्रकार सत्यदेव शर्मा के अंतर्द्वंद्व में व्याप्त देखी जा सकती है 'जो सच होकर भी झूठ और झूठ होकर भी सच हैं।'

मयना और सत्यदेव की प्रेम कथा अल्हड़ दिलों की नादान प्रेम कथा है। उसमें की गई भूल ग़लती जो भी है,वह उन्माद है, अज्ञान है। उसमें किशोरावस्था की वेगवती नदी का उन्मत्त और उद्दाम प्रवाह है, जो कभी किसी के रोके नहीं रुका है। सत्यदेव के हृदय में बैठा भय और उससे पैदा हुई दुश्चिंता बाढ़ के थमने के बाद की बर्बाद हुई फ़सल पर व्यक्त हुई चिंता है। एक असहाय की चिंता है। इस दुष्चिन्ता में उसे एक भयानक सपना आता है जिसमें उसे ऐसा लगता है कि जैसे भीड़ उसकी ओर बढ़ती चली आ रही है,'मारो.... मारो... इन्हें।

राजकुमरा भी शामिल है उस भीड़ में। वह चिल्ला रहा है–साली, राजपूतों में लौंडों की कमी हो गई है कि इस बढ़ई से पेलवा रही है। इसका गला रेत दो और नदी में फेंक दो।' इसके बाद वे सब इतना नोचते खसोटते हैं कि मयना की साड़ी खुल जाती है। उस पर किरासन तेल छिड़का जा रहा है। समाज के यथार्थ का यह वीभत्स चेहरा भी इस उपन्यास में है। उसका भय जो पहले स्वप्न के रूप में जीवन में जगह बनाता है, फिर यथार्थ में तब्दील हो जाता है। कैनवास पर चित्रित अपने दोस्त सैफू और अपने प्रेम की अप्रतिम प्रतीक मयना का ज़िक्र करते हुए सत्यदेव कहते है,'–यह जो आग में जल रही औरत है न –यह मयना है और जिसका गला रेता जा रहा है वह मेरा दोस्त सैफू है।' यह सब कहते हुए सत्यदेव सामान्य नहीं रह पाते। उसे कहते हुए ऐसा लगता है कि जैसे वे, 'हिचकियाँ लेकर रोना शुरू कर देंगे। वे अपनी आँख उस बनी हुई तस्वीर पर गड़ाए रहते हैं और आँख से लगातार आँसू बरसते जा रहे हैं।' वे आँसुओं की बरसात थमने पर फिर कहना शुरू करते है, '–इन तमाम चीजों के लिए मैं ज़िम्मेवार हूँ विमल बाबू। मैं अब तक यही सोच रहा हूँ कि वह मयना जिसके हाथ में फूल भी चुभ जाते थे कई बार –वह किस तरह जली होगी।' यह सब कहते हुए सत्यदेव का तस्वीर से चिपकना उनकी अस्थिर मनोदशा का परिचायक है। उसकी इस मनोदशा के लिए क्रूर समाज ज़िम्मेवार है। इस ठहरे हुए प्रेम –सरोवर के किनारे विक्षप्त अवस्था में बैठा या खड़ा या फिर बेचैन –सा लंबे डगों से चलता हुआ चित्रकार उपन्यासकार की मेधा और भावना शक्ति का संयुक्त सृजन है,जो समय और समाज दोनों को सुधरने के लिए ताल ठोंक कर चुनौती देता है।

मयना के बाद रिंकी की प्रेम कथा है जो चित्रकार के जीवन में हौले से आ जाती है। रिंकी मयना की स्मृतियों को एक पुरातत्त्वविद् की तरह बिना किसी नुकसान के आहिस्ता–आहिस्ता सरकाती है और उसकी जगह स्वयं लेने लगती है। उसके प्रेममिलन के दृश्य को चित्रकार स्वयं चित्रित करता है,'फुटपाथ पर बने एक चबूतरे पर वह बैठ गई है और उसने मुझे भी बैठा लिया है अपने पास। कई आते–जाते लोग हमें अजीब नज़रों से देखते हुए गुज़र जाते हैं लेकिन वह इन सबसे बेपरवाह मेरे पास एकदम चिपटी हुई बैठी है। उसकी आँखों में उस समय प्यार की एक नदी उतार आई है जिसे देखकर मेरे हृदय को असीम सुख मिल रहा है। वह बैठे–बैठे अचानक उद्वेलित हो उठती है और मुझे अपनी बाँहों में भर लेती है।' चित्रकार को यह आभास नहीं है कि यह नदी बहुत जल्दी सूख जाएगी। उसे यह भी नहीं पता कि रिंकी के पिता उसे अमेरिका ले जा रहे हैं। अंततः वह दिन भी आ जाता है जब रिंकी को न चाहते भी अमेरिका जाना पड़ता है। चित्रकार उसकी विदाई के पूर्व के मिलन के एक दृश्य में कहता है कि, 'तब मुझे नहीं पता था कि वह हमारी आखिरी मुलाक़ात थी –कि मैं अंतिम बार उसके इतने करीब था कि उसके हिलते हुए वे हाथ और उसके बनते–बिगड़ते हुए चेहरे के रंग बहुत दिनों तक मेरा सोना हराम करने वाले हैं।' अपनी प्रेम कथा के इस पाठ को भी जब वह पूरा नहीं कर पाता है तो बेचैन रहते–रहते विक्षिप्त हो जाता है। लेकिन मयना के जलने और रिंकी की कासमेटिक की गंध उसका पीछा नहीं छोडतीं। वह नेरेटर से खुद कहता है–'विमल बाबू तुम जाओ। बहुत रात हो गई है। –देखो चारों ओर फिर से वही गंध फैल रही है। थोड़ी देर में यहाँ रहना मुश्किल हो जाएगा। यह सपनों के जल जाने की गंध है...यह वह गंध है जो मयना के आग में जलने के समय पैदा हुई थी।–यह सैफू के शरीर के सड़ जाने की बदबू है विमल बाबू। यह रिंकी सेन के शरीर से हर समय आने वाली एक खुशबू के अचानक बदबू में बदल जाने की बू है। मुझे कंबल के अंदर दुबक जाने दीजिए ...। सिर दर्द से फटा जा रहा है।' किसी कलाकार के लिए समय के भयावह हो जाने की पीड़ा है यह। इसी से उसका सर फटा जा रहा है।

मयना के बाद रिंकी सेन चित्रकार सत्यदेव के जीवन में आती तो है पर उसके जीवन के कैनवास की स्याह-धूसर पृष्ठ भूमि पर सुंदर-सुंदर रंग भरने के बजाय उसे रँगते-रँगते और और धूसर और स्याह कर जाती है यानी उसे और उदासी से भर जाती है। लेकिन इन स्याह -धुँधली परिस्थितियो और अवस्थाओं-व्यवस्थाओं के बीच यह सुखद ही है कि एक कलाकार अपनी विक्षिप्तावस्था में भी लोकतंत्री आस्था के प्रति सजग है। अपनी बड़बड़ाहटों के बीच सत्यदेव पूरे होश के साथ यह कहना नहीं भूलते हैं कि -' चुनाव होने वाला है -मेरा कार्ड बक्से के अंदर है-मैंने छुपाकर रखा है। इस बार इन हरामियों को वोट नहीं दूँगा। मैं अपनी मर्ज़ी से वोट दूँगा इस बार.....। तुम जाओ विमल बाबू इस बूढ़े दरबान को अंदर आने दो।' जिस समय ने कलाकार को बहुत सारे घाव दिए है, वह उसी की छवियों को चित्रित करता है। उसकी एक कथा गढ़ता है। सत्यदेव के चित्र भी कुछ और नहीं निर्मम समय को तर करते कथा चित्र हैं। कलाकार की दुनिया यही चित्र हैं। कलाकार स्वयं कहता है-'मेरी बनाई हुई तस्वीर एक कथा है-इनसे बहार कोई दुनिया नहीं। मुझे ऐसे ही मर जाना है एक दिन। तस्वीरों की ओट में एक पूरा संसार छिपा हुआ है। -इन्हीं तस्वीरों के पीछे एक पूरा समय है जो मेरा अपना है जिस समय में मेरी आवाजाही जिस दिन बंद कर दोगे -मैं मर जाऊँगा। उस जगह सैफू की दोस्ती से भरी हुई निगाह है।-मयना की निर्दोष हँसी है -रिंकी के सपने हैं जिसमें मेरा मन शामिल है। इन तसवीरों को छोडकर जब आपकी दुनिया में आता हूँ तो लगता है कि किसी जंगल आ गया हूँ।' यहाँ कला के लिए जंगल होते जाते समय और समाज के प्रति कलाकार की शिकायत है। इसी क्रूर समय और समाज को जवाब देने के लिए ही कलाकार अपना प्रतिसंसार रचता है, जैसे सत्यदेव बाबू रच रहे हैं।

साधुखान उर्फ सत्यदेव जैसे मूक कलाकार के करुण अंत की ओर कथा को धीरे से सरकाते हुए नेरेटर उन्हें रिंकी की उस प्रदर्शनी में पहुँचा देता है जहाँ उनकी भी एक पेंटिंग लगी है और फिर जब रिंकी उसे दिखती है तो खुशी सह न पाने के कारण कलाकार को अटैक पड़ जाता है। आगे की घटना के विषय में भी वही बताता है कि, 'मैं सत्यदेव के पास पहुँचता हूँ। उनके मुँह से आवाज़ नहीं निकल पा रही। वे कुछ कहना चाह रहे हैं -लेकिन उनके हलक उनका साथ नहीं देते। रिंकी उनके पास है-उसने उनके सिर को गोद में रख लिया है और लगातार उनके माथे पर हाथ फेरती हुई पता नहीं क्या-क्या बोलती जा रही है और रोती जा रही है।' जिस प्रेम के लिए कलाकार जीवन भर तरसता रहा आज वही उसे गोद में लिए बैठा है। नियति का खेल भी कितना विचित्र होता है कि जब तक वह जीवित रहा प्रेम उससे परे रहा और आज जब प्रेम उसके पास है तो जीवन उससे दूर जा रहा है।

वरिष्ठ कथाकार तेजेंद्र शर्मा ने इस उपन्यास के बारे में एक बड़े पते की बात कही है-'लेखक को कहानी और पाठक के बीच में स्वयं नहीं आना चाहिए ...मगर परंपराएँ तो टूटने के लिए ही बनती हैं ना।' सच में परंपरा भंजक की भूमिका में आए विमलेश त्रिपाठी ने इस कथा और उसके शिल्प दोनों को परंपरा से हटकर गढ़ा है। उसके बाद उसको जादुई अहसासों से भर भी दिया है। इस नए शिल्प में कथा कहना भी एक कला है। एक ऐसी कला जिसमें लेखक का बीच में पड़ना लाजिमी हो गया था। एक ऐसी कथा जिसे अभिनव शिल्प के 'कैनवास पर प्रेम' रचती हुई कूची का जादू कह सकते हैं। और, विश्वास के साथ कह सकते हैं कि यह वह प्रेम कथा है जहाँ एक भी शब्द अनावश्यक नहीं है और यह भी कह सकते हैं कि इसके लेखक की कलम पद-पद पर निरापद और अभिमंत्रित शब्द संधान-सा करती चलती है। यकीन मानिए यदि कथाकार बीच में न पड़ता तो यह जादू पैदा ही नहीं हो सकता था। इस जादुई कथा वितान में से न जाने कितनी परतों में प्रेम में से प्रेम निकलता रहता है और पाठक बस आँखें फाड़े उसे पढ़ता और उससे निर्मित होते दृश्य बिंबों को निहारता रहता है।

❑❑❑

डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'
क्वान्तोंग वैदेशिक अध्ययन
विश्वविद्यालय
क्वन्चौ, चीन

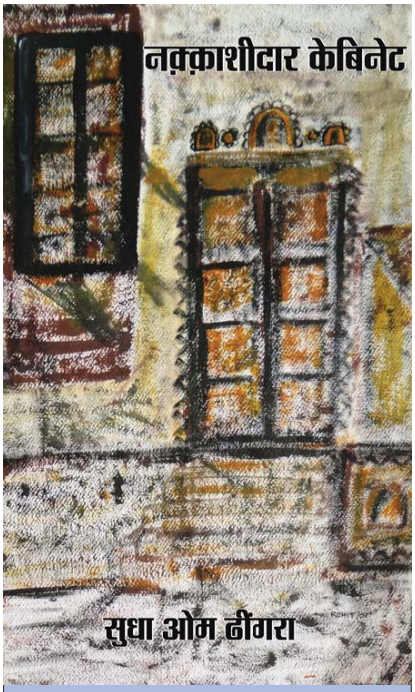

पुस्तक चर्चा
(नक़्क़ाशीदार केबिनेट)
अजय नावरिया

सुधा ओम ढींगरा उन चुनिन्दा प्रवासी कथाकारों में से एक हैं जिनके लेखन में, रचनात्मक ढंग से एक नई दुनिया का उद्घाटन होता है। कल ही उनका पहला उपन्यास 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' पढ़ कर पूरा किया। शिवना प्रकाशन ने इसे प्रकाशित किया है। यह उपन्यास भारत और अमेरिका की संस्कृतियों के अच्छे-बुरे पहलुओं का बहुत ईमानदारी से मूल्यांकन करता है। लेखिका ने मुख्य पात्र के माध्यम से अनेक प्रवासी भारतीयों के अर्न्तमन की थाह ली है।

पंजाब में फैले नशे के कारोबार पर यह उपन्यास पहले ही आ गया था, 'उड़ता पंजाब' फिल्म बहुत बाद में आई। अनेक सामाजिक समस्याओं को समेटे हुए चलता है यह उपन्यास। पढ़ते हुए कभी लगता है कि कई रहस्यों से भरा उपन्यास है, रोचकता बनी रहती है। इस उपन्यास के आने से, प्रवासी कथा साहित्य ही नहीं, हिन्दी साहित्य भी समृद्ध हुआ है। सुधा जी को उनके पहले उपन्यास पर बहुत बहुत बधाई। उम्मीद है कि वे और उपन्यास लिख कर वहाँ की परिस्थितियों से हिन्दी पाठकों को अवगत कराएँगी।

❑❑❑

समीक्षा

चुनाव एवं पत्रकारिता का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़

सुशील कुमार शर्मा

चुनाव, राजनीति और रिपोर्टिंग

चुनाव, राजनीति और रिपोर्टिंग
लेखक –ब्रजेश राजपूत
प्रकाशक –शिवना प्रकाशन सीहोर

चुनाव और राजनीति भारतीय मानस के दो बहुत पसंदीदा एवं समाज केंद्रित किन्तु दुरूह विषय है, रिपोर्टिंग का विषय भारतीय नागरिक के लिए अभी भी अबूझ एवं समझ से थोड़ा अलग विषय माना जाता है। इन तीनों विषयों का समायोजन कर उसे एक दस्तावेज़ का रूप देना एक बहुत परिपक्व लेखक एवं पत्रकार ही कर सकता है। और यह काम ब्रजेश राजपूत ने बखूबी किया है।

ब्रजेश राजपूत भारतीय मीडिया का एक ऐसा चेहरा है जो सूचनाओं को संवेदनशीलता एवं सच्चाई प्रदान करता है। ब्रजेश राजपूत ने सागर विश्वविद्यालय से पत्रकारिता की उपाधि प्राप्त करने के बाद पत्रकारिता के क्षेत्र में ख़्यातिनाम उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। ब्रजेशजी का सबसे बड़ा गुण उनका अपनी जड़ों से प्यार करना है। सफलता व्यक्ति को जड़ों से काट कर आसमान में लटका देती है। जो जड़ छोड़ देते हैं वो ताड़ बन जाते हैं लेकिन जो जड़ नहीं छोड़ता वही वटवृक्ष बनता है। यही कारण है कि वह आज पत्रकारिता के क्षेत्र में भारत का एक प्रमुख चेहरा हैं।

ब्रजेश राजपूत की पुस्तक 'चुनाव, राजनीति और रिपोर्टिंग' उस समय आई जब मध्यप्रदेश में 2013 के विधानसभा चुनाव अपने शबाब पर थे। इन तीनो गूढ़ विषयों को समग्र रूप से विश्लेषित करने के लिए लेखक को विशद्, अध्ययनशील,ज़मीनी अनुभव के साथ साथ सामाजिक सरोकारों से परिचित होना एवं अपने भावों को सरल, सुगम किन्तु साहित्यिक भाषा में प्रवाहित करना अत्यन्त आवश्यक होता है। ब्रजेश राजपूत ने अपनी पुस्तक में इन तीनों गूढ़ विषयों को एकीकृत करके मध्यप्रदेश के विधानसभा चुनाव का जो विश्लेषण किया है, वह अकल्पनीय है।

चुनाव का विषय सिर्फ राजनीति तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके साथ उस क्षेत्र एवं मतदाताओं की सांस्कृतिक, सामाजिक, व्यहारिक एवं भौगोलिक अस्मिताएँ शामिल होती हैं। इन सभी घटकों का सामूहिक विश्लेषण कर सटीक परिणाम की ओर इंगित करना इतना आसान नहीं होता। इस पुस्तक में ब्रजेश राजपूत ने अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं से इस दुरूह विषय का जो विश्लेषण प्रस्तुत किया है वो बेहद सटीक एवं वास्तविकता के करीब है।

चुनाव को लेकर तीन अवधारणाएँ काम करती हैं। दलों की अवधारणा, जनमानस की अवधारणा एवं मीडिया की अवधारणा। इन तीनो अवधारणाओं के अपने अपने पैमाने होते हैं। इन पैमानों को समझना एवं उस आधार पर चुनाव का विश्लेषण कर वास्तविक परिणामों से साम्यता स्थापित करना बहुत ही अनुभव जन्य कार्य है। ब्रजेश जी ने जिस तरह से पूरी स्थितियों का क्रम बद्ध विश्लेषण किया लगता है जैसे चुनाव पूरी तरह क्रिकेट का मैच है और हम ब्रजेश राजपूत से कमेंट्री सुन रहे हैं।

चुनावी रिपोर्टिंग की अपनी चुनौतियाँ होती हैं। ब्रजेश राजपूत ने रिपोर्टिंग को नए आयाम दिए हैं। जिस तरह से सरल, सकारात्मक एवं बेबाक तरीके से चुनाव की कवरेज की, वह उनके रिपोर्टिंग में चार चाँद लगाती है। उन्होंने सफल चुनावी रिपोर्टिंग के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए रिपोर्टिंग के कुछ तरीके बताएँ हैं। एक जगह उन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा है 'इसलिए सवाल सीधे नहीं, घुमा कर पूछने की अदा रिपोर्टर को आनी चाहिए वर्ना कई दफा मतदाता ऐसा बेरुखा जबाब देता है कि रिपोर्टर खिसिया के रह जाता है।

उन्होंने अपनी पुस्तक में मतदाता की चालाकी का उदाहरण श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास राग दरबारी उपन्यास से दिया है 'वोट की भिक्षा बड़े बड़े नेताओं को विनम्र बना देती है..... जब आप वोट की भीख माँग रहे हो तो आप ही ले जाओ वोट.....।' उन्होंने इस उदाहरण से स्पष्ट किया है कि आज के मतदाता के मन को टटोलना बहुत मुश्किल है।

पुस्तक का प्रथम अध्याय 'चुनाव पर किताब क्यों' ही इस पुस्तक की महत्ता का बखान करता है। आज़ादी से लेकर आज तक भारतीय जन मानस ने चुनाव देखे हैं उनमें हिस्सा भी लिया है किन्तु चुनाव की केमिस्ट्री से अधिकांशत: अनभिज्ञ हैं। चुनाव की यह रहस्यमय विधा राजनीतिक दलों एवं मीडिया हाउस के गुप्त तहखानों में बंद रहती है। ब्रजेश राजपूत की इस पुस्तक ने बड़े सहज एवं सरल ढंग से उस विधा से आम नागरिक को परिचित कराने का प्रयास किया है।

मध्यप्रदेश में 2013 के विधानसभा चुनाव कई मामलों में अहम था। जहाँ एक ओर कांग्रेस अपने क्षत्रपों के अहंकारों के नीचे दबी

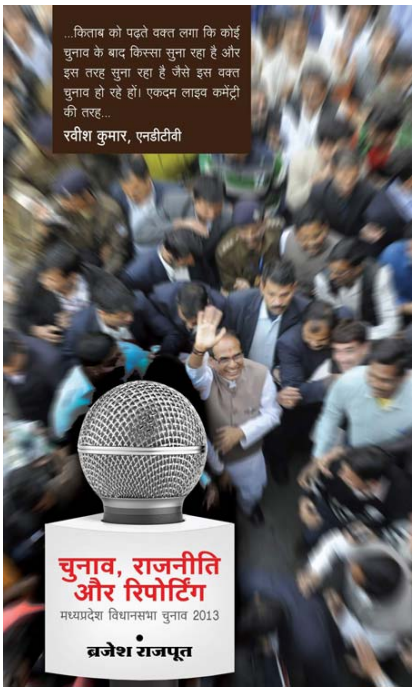

कराह रही थी वहीं शिवराज अपनी लोकप्रियता के चरम पर थे। कांग्रेस के पास एक मात्र तिनके का सहारा था शिवराज का मोदी विरोधी केम्प का होना। कांग्रेस सोच रही थी कि बीजेपी को बीजेपी ही निपटाएगी और वह सत्ता पर काबिज हो जाएगी। कांग्रेस को और से शिवराज के विरुद्ध युवा ज्योतिरादित्य सिंधिया को उतारा गया और परिणाम सबके सामने है। इन सभी घटनाओं एवं चुनावी रणनीतियों एवं मतदाता की मानसिकता का रोचक विश्लेषण लेखक ने बखूबी किया है।

ब्रजेश राजपूत की यह पुस्तक मध्यप्रदेश की राजनीति एवं पत्रकारिता का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है, जिसमें पहले चुनाव की रिपोर्टिंग से लेकर 2013 तक के चुनाव के राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक परिदृश्यों का परिकथा के सामान चित्रण किया गया है। इस पुस्तक में मीडिया की शुरुआती इतिहास से लेकर वर्तमान स्थिति का विभिन्न सन्दर्भों में विश्लेषण प्रसंशनीय ही नहीं बल्कि अकल्पनीय है।

वर्तमान में पत्रकारिता इसलिए चुनौती है क्योंकि राजनैतिक सत्ता खुद को एवं चुनावी जीत को संविधान से ऊपर मानने लगी है। सूचनाओं की तीव्रतम व्याख्याएँ होने लगी हैं। न्यूज़ चैनल अख़बार और अख़बार ने चैनल बन चुके हैं। सोशल मीडिया से लोग दूसरों के इतने नज़दीक हो गए कि अपनों से दूर होने लगे हैं। ऐसी स्थिति में पत्रकारिता का निर्भीक, निष्पक्ष एवं सम्मोहक होना नितांत आवश्यक बन गया है।

ब्रजेशजी की यह पुस्तक दर्शाती है कि पत्रकारिता सिर्फ सूचनाओं का सम्प्रेषण नहीं है बल्कि संवेदनशील, मुखर जन हितेषी आवाज़ है जो समाज को आंदोलित करती है। पत्रकारिता सवाल एवं जन सरोकारों के मुद्दे उठाती है और इन सवालों से लोकतंत्र उन्नत होता है। पत्रकार किसी विशेष दल या व्यक्ति के लिए कलम उठाता है तो पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर लिखता है लेकिन जब वह जनसरोकार को अपनी लेखनी में उतारता है तो दिलों को छू लेता है ब्रजेशजी लोगों के दिलों में बसते है दलों में नहीं।

राजनीतिक रिपोर्टिंग पत्रकारिता के प्राण हैं। लेकिन अब चुनाव के इतर यह विधा करीब करीब हाशिये पर चली गई है। सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज़ के एक सर्वेक्षण के आधार पर हिंदी एवं अंग्रेज़ी के 8 प्रमुख चैनलों पर प्राइम टाइम पर राजनैतिक कवरेज में 50 प्रतिशत तक की गिरावट आई है। इसके मायने हैं कि राजनीतिक एवं पत्रकारिता की गठजोड़ जनता को पसंद नहीं है। ब्रजेश राजपूत की इस पुस्तक ने राजनीतिक रिपोर्टिंग का स्तर ऊँचा उठाया है एवं यह आम आदमी के विश्वास को जीतने में कामयाब रही है। इस पुस्तक में प्रेस या मीडिया की आज़ादी का मतलब किसी मीडिया हाउस, मीडिया पर्सन या कम्पनी की आज़ादी नहीं वरन जन सरोकारों के मुद्दे उठाने की आज़ादी बताई गई है।

यह पुस्तक राजनीति के विद्यार्थियों के लिए एक शोधग्रंथ के समान है। यह पुस्तक तीन खण्डों में विभाजित है प्रथम भाग में ब्रजेश राजपूत ने चुनाव एवं रिपोर्टिंग की बारीकियों का विश्लेषण किया है। द्वितीय भाग में मध्यप्रदेश के विधानसभा चुनाव से सम्बंधित 13 लेख जो चुनावी परिदृश्य को परिभाषित कर रहें हैं का अनूठा संकलन हैं। यह लेख ब्रजेश राजपूत की प्रवाहमयी एवं धारदार असरदार लेखनी की गहराई को प्रदर्शित के हैं। इस पुस्तक का तीसरा भाग चुनावी आँकड़ों एवं चुनाव से संबंधित तस्वीरों से अलंकृत है जो मध्यप्रदेश के विधानसभा के चुनावों की सतरंगी तस्वीर पेश करती है।

'चुनाव, राजनीति और रिपोर्टिंग' इस पुस्तक को पढ़ते हुए आपको लगेगा की आप कोई फिल्म देख रहे हैं और एक के बाद एक दृश्य आपकी आँखों के सामने से गुज़र रहें हैं और आप मंत्र मुग्ध होकर उन्हें देख रहे हैं व सुन रहे हैं। अमूमन चुनावी चकल्लस का विश्लेषण इतना सजीव नहीं होता जितना ब्रजेश राजपूत ने अपनी लेखनी से उसे जीवंत कर दिया है। इस पुस्तक में लेखक ने पत्रकारिता को एक नई रूपक शैली एवं विशिष्टता प्रदान की है। पुस्तक की भाषा सरल प्रवाहमयी एवं साहित्यिक है। भाषा ने घटनाओं को संवेदनाओं में पिरोया है।

यह उच्च कोटि की जीवंत पुस्तक भारतीय राजनीति, चुनाव एवं पत्रकारिता का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है। इस पुस्तक को लिखने के लिए ब्रजेश राजपूत बधाई के पात्र हैं।

❐❐❐

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)। शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : सीहोर, मध्य प्रदेश
2. प्रकाशन का अंतराल : त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़। क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ। (यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं। पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ। (यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं। पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर। क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ। (यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं । स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ। (यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

हस्ताक्षर

पंकज कुमार पुरोहित
प्रकाशक

शिवना प्रकाशन की पुस्तकों के नए संस्करण

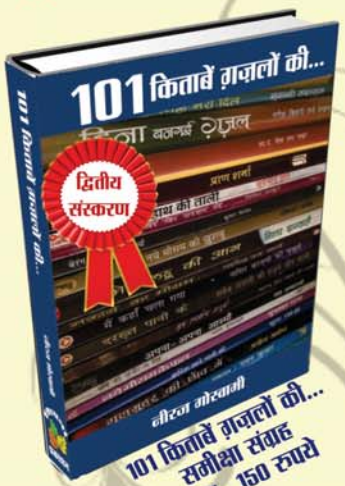

101 किताबें ग़ज़लों की...
समीक्षा संग्रह
मूल्य . 150 रुपये

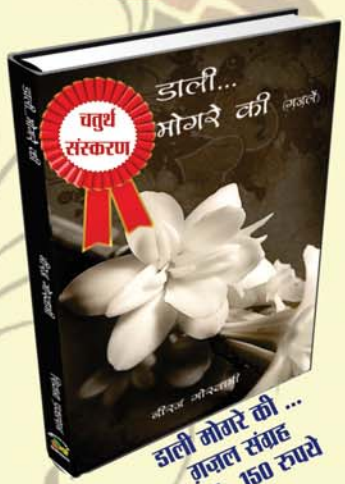

डाली मोगरे की ...
ग़ज़ल संग्रह
मूल्य . 150 रुपये

नक़ाशीदार केबिनेट
उपन्यास
मूल्य . 150 रुपये

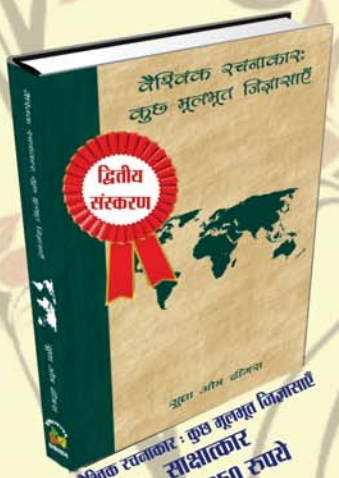

वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ
साक्षात्कार
मूल्य . 250 रुपये

दस प्रतिनिधि कहानियाँ
कहानी संग्रह
मूल्य . 150 रुपये

कसाब.गांधी@सरहद.इन
कहानी संग्रह
मूल्य . 150 रुपये

अकाल में उत्सव
उपन्यास
मूल्य . 150 रुपये

नई सदी का कथा समय
कथालोचना
मूल्य . 200 रुपये

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9584425995,
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

Shivna Prakashan Books Available At
All Leading Online Shopping Stores

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

paytm
https://www.paytm.com

ebay
http://www.ebay.in

Shivna Sahityiki ● Quarterly ● July-September 2016 ● RNI : MPHIN32499 ● ISSN : 2455-9717

छपी पुस्तक धारा 121/1 (घ) के अंतर्गत

स्वत्वाधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, समृद्ध कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक जुबैर शेख द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

पढ़े ना कोई 12वीं से कम

मेरे प्रदेश का हर बच्चा
स्कूल जाए, पढ़े और आगे बढ़े।

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्य प्रदेश

आप हैं प्रदेश के युवा,
आप हैं ऊर्जा के स्त्रोत,
आप बनेंगे प्रेरक,
तो बदलेगा प्रदेश...

पारसचन्द्र जैन
मंत्री, स्कूल शिक्षा, म.प्र.

ज्ञान सिंह
मंत्री, आदिम जाति कल्याण, म.प्र.

दीपक जोशी
राज्य मंत्री, स्कूल शिक्षा, म.प्र.

स्कूल चलें हम अभियान के प्रेरक (मौटिवेटर) बनने के लिए
बस एक मिस्ड कॉल करें: **0755-2570000** नंबर पर

या

लॉगऑन करें: **www.schoolchalehum.mp.gov.in** वेबसाईट पर

या

संपर्क करें: जिला शिक्षा अधिकारी/जिला परियोजना समन्वयक/
विकासखंड शिक्षा अधिकारी/विकासखंड स्त्रोत केन्द्र समन्वयक अथवा
स्थानीय जनशिक्षक से।

स्कूल चलें हम अभियान
मध्य प्रदेश

www.facebook.com/schoolchalehum.mp.gov.in www.schoolchalehum.mp.gov.in